भर्तृहरिशतक

भाष्यकार, संपादक एवं प्रकाशक

धर्मपाल कपूर

बी०ए० ऑनर्स, एम०ए०

कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

संस्करण : 2018
प्रतियाँ : 1000

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

टंकण एवं साजसज्जा : **अभिनव इंटरप्राइजिज, मो. 94683 40497, 81684 90221**
मुद्रक : **यू०आर०बी० प्रिंटिंग प्रैस, शैड नं. 2, रतपुर कॉलोनी, पिंजौर,**
मो. 9466111730, 9466112730

दो शब्द

महाराजा भर्तृहरि ने जो भी लिखा है वह निस्संदेह अनुभव के आधार पर लिखा है। वे एक नीतिनिपुण राजा थे। नीतिशतक में कही हुई नीतियाँ उनके राज-काज में आये अनुभवों का ही सार है। इसी प्रकार राजा होने के साथ-साथ वे गृहस्थ भी थे और गृहस्थ सम्बन्धी एवं कामशास्त्र के विचार भी उनके अनुभवजन्य हैं। अन्त में वे विरक्त होकर योगी बन गये थे और वैराग्यशतक उनके उसी वैराग्यकाल की रचना कही जाती है, ऐसा स्पष्ट भी होता है। इस विवेचन के साथ हम कह सकते हैं कि भर्तृहरि के शतकों की अत्यधिक सर्वप्रियता का एक उपर्युक्त कारण भी है। इनमें आबालवृद्ध सबके लिये अपनी-अपनी इच्छानुकूल सामग्री मिलती है। इसीलिये ये सब के काम के हैं।

भर्तृहरिशतक में केवल 308 श्लोक हैं जो निम्नलिखित तीन शतकों के अन्तर्गत आते हैं। पहला नीतिशतक में 11 विषय हैं। इसमें मनुस्मृति और महाभारत की गम्भीरता नैतिकता, कालिदास की-सी प्रतिभा के साथ प्रस्फुटित हुई है। विद्या, वीरता, दया, मैत्री, उदारता, साहस, कृतज्ञता, परोपकार-परायणता आदि मानव-जीवन को ऊँचा उठाने वाली उदात्त भावनाओं का उन्होंने बड़ी सरल एवं सरस पदावली में वर्णन किया है। इसमें जिन नीति-सिद्धान्तों का वर्णन किया गया है। वे संसार के मानव-मात्र के लिए भूषण रूप हैं।

दूसरा शृंगार शतक में 12 विषय हैं इसमें कवि ने शृंगार का चटकीला चित्रण किया है। इस शतक में कवि ने ललित-मधुर शैली में यह दिखलाया है कि स्त्रियाँ अपने आकर्षण द्वारा पुरुषों पर कैसा जादू कर देती हैं। शूर से शूर पुरुष भी काम का गर्व चूर कर देने में असमर्थ है।

तीसरा वैराग्य शतक में भी 11 विषय हैं। इसमें कवि ने कारुण्य और निरांकुलता के साथ संसार की निस्सारता और वैराग्य की आवश्यकता प्रतिपादित की है। संसार एक विचित्र पहेली है—कहीं वीणा का सुमधुर संगीत सुनाई पड़ता है, कहीं सुन्दर रमणियाँ दीख पड़ती हैं तो कहीं

कुष्ठ-पीड़ित शरीरों के बहते हुए घाव ।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने में मुझे सर्वश्री लालचंद जी चौहान, सरदारी लाल जी धवन, रोशन लाल अग्रवाल जी, जय किशन जी, नरेश बंसल जी आदि ने सहयोग प्रदान किया है । अतः मैं इन सबके सहयोग के लिए अत्यंत कृतज्ञ हूँ । इसके अतिरिक्त मैं उन सभी लेखकों एवं कृतिकर्ताओं का भी अत्यंत धन्यवादी हूँ । जिनकी कृतियों से संदर्भ उद्धृत किये गये हैं । वस्तुतः बोलना सरल है परन्तु लिखना अत्यधिक कठिन है जैसे कि संस्कृत में एक उक्ति है–

शतं वदं एकं मा लिख

अर्थात् सौ बार कहो परन्तु एक बार भी मत लिखो । क्योंकि लेखन में यदि कोई त्रुटि रह गई तो लेखक की पोल खुल जाती है ।

मैंने प्रस्तुत पुस्तक के लिखने में पूर्ण सावधानी बरती है । परन्तु संसार का प्रत्येक व्यक्ति अल्पज्ञ और अपूर्ण है । अतः यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो पाठकगण से क्षमा चाहूँगा ।

धर्म पाल कपूर

तिथि : 17.06.2018

(**धर्मपाल कपूर**)
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मोबाइल : 9356301618

निवेदन

श्री धर्मपाल कपूर जी ऋषि, मुनि महापुरुषों के ग्रंथों का स्वाध्याय करते रहते हैं और उन ग्रंथों में से उन तथ्यों का संग्रह करते हैं, जो आम साधारण लोगों के लिये जीवन में परिवर्तन लाने में उपयोगी है। इस पुस्तक में उनके द्वारा अपनी पुस्तकों का विवरण दिया है। वह इस प्रकार से उपयोगी बातों का संग्रह कर पुस्तक लिखते हैं, जैसे मधुमक्खी अनेक प्रकार के फूलों से रस ग्रहण करके छत्ते में मधु का संग्रह करती है, मधु कितने रोगों के उपचार में काम आता है, कितनी ऐसी दवाइयाँ हैं, जो शहद के साथ सेवन की जाती हैं। इसी प्रकार श्री कपूर जी की पुस्तकों में ज्ञान अनेक बुराइयों को दूर करने में उपयोगी है। अब जिस पुस्तक के विषय में कुछ संक्षिप्त में वर्णन पाठकगणों के सम्मुख है, उसका शीर्षक है 'भर्तृहरिशतक'। यह पुस्तक बहुत से लोगों ने पढ़ी होगी। आपके लिए उन पुस्तकों में और इस पुस्तक में अन्तर क्या है? यह जानने योग्य बात है। श्री धर्मपाल कपूर जी ने अपनी पुस्तक में श्लोकों का भावार्थ वेद आधारित वैदिक मान्यताओं को ध्यान में रखते हुए किया है। इस पुस्तक को महाराजा भर्तृहरि जी ने मुख्य तीन शतकों में लिखा है। पहला शतक 'नीतिशतक', जिसमें मानव जीवन को उच्च बनाने के उपायों पर बल दिया है, विद्या, बल, आचरण का सुधारना धर्म का पालन करना, कर्त्तव्य पालना आदि के विषय में प्रकाश डाला है।

दूसरा शतक शृंगार शतक है जिसमें स्त्रियों के शृंगार,स्त्रियां कैसे अपने आकर्षण से पुरुषों को आकर्षित करती हैं। बड़े-बड़े विद्वान्, योद्धा, शूरवीर भी इस आकर्षण से बच नहीं पाते हैं। इसका बड़े ही सुनियोजित ढंग से वर्णन किया है।

तीसरे शतक में वैराग्य के विषय में प्रकाश डाला गया है कि मनुष्य किस तरह से मोक्ष प्राप्त कर सकता है। तीनों शतकों का निष्कर्ष क्या है?

प्रथम शतक का निष्कर्ष–

तेजस्वी और सत्यव्रत को धारण करने वाले पुरुष लज्जादि गुणों को उत्पन्न करने वाली अपनी माता के समान शुद्ध हृदय वाली स्वतंत्र प्रतीज्ञा को नहीं छोड़ते, चाहे इसके लिये उन्हें अपने प्राण ही क्यों न त्यागना पड़े।

दूसरे शतक का निष्कर्ष–

जो योगाभ्यासी होते हैं और उनकी पुण्य आत्माओं से मैत्री है, उन्हें स्त्रियों के आभूषण, मुख कमल और कुच कलश वक्ष को लागने में क्या आनन्द मिलेगा ? उनका आनन्द तो प्रभु में ध्यान मग्न होने में है ।

तीसरे शतक का निष्कर्ष–

ब्रह्मज्ञान के आगे त्रिलोक का आनन्द फीका है, उसे पाकर भोजन, वस्त्र मानादि की चेष्टा नहीं करता । अर्थात् परमानन्द मोक्ष सुख से बढ़ कर कोई आनन्द नहीं है ।

इन तीनों में से जिस विषय में जिसकी रुचि है, उसका अध्ययन करके उस विषय का ज्ञान प्राप्त कर सकता है । हमारे महापुरुषों द्वारा लिखे गये ग्रंथों में स्वार्थी लोगों ने मिलावट करके ग्रंथों में वेद की मान्यताओं के विरुद्ध बातों को शामिल कर दिया है, जिससे लोग भ्रमित हो जाते हैं । इस पुस्तक की प्ररुफ रीड़िंग मेरे द्वारा की गई है, प्रयास किया गया है कि त्रुटि न रहे, परन्तु मनुष्य से कहीं न कहीं गलती हो ही जाती हैं कृपया जो त्रुटि रह गई हो उसको भविष्य में सुधार की दृष्टि से सूचित करें, न कि टीका-टिप्पणी की दृष्टि से ।

मैं श्री धर्मपाल कपूर जी के इस परोपकारी पुरुषार्थ के लिये उनको बधाई देता हूँ और परमपिता परमेश्वर से उनके उत्तम स्वास्थ्य, निरोग व दीर्घायु प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ, ताकि वह इस परोपकारी कार्यों को अन्तिम क्षण तक करते रहें । इतनी सामर्थ्य ईश्वर उन्हें प्रदान करें ।

विनीत

लालचन्द चौहान

से.नि. राज्य विकास अधिकारी

कोठी नं. 591/12, पंचकूला

मो. 8557057170

विशेष सूचना

1. स्वाध्याय, मनन और आत्मसात् ।
2. पाठकगण पुस्तक पढ़ने के पश्चात् किसी भी स्वाध्यायशील मित्र को इसे देने की कृपा करें ।
3. कोई भी जिज्ञासु अपनी इच्छानुसार इसकी प्रतियाँ फोटोस्टेट करवा कर स्वाध्यायशील मित्रों में प्रचार-प्रसार के लिये बाँट सकता है ।
4. पुस्तक केवल प्रचारार्थ लिखी गई है और सदुपयोग ही इसका मूल्य है ।
5. सर्वाधिकार लेखकाधीन ।

धर्मपाल कपूर
बी.ए. ऑनर्स, एम.ए.
कोठी नं. 1135, सैक्टर 11,
पंचकूला-134112 (हरियाणा)
फोन : 0172-2567845
मो० : 9356301618

विषयसूची

क्र.सं.	विषय
	पहला खण्ड
	नीतिशतक (पृष्ठ 1 - 36)
1.	मंगलाचरण
2.	मूर्खनिन्दा
3.	विद्वत्प्रशंसा
4.	मानशौर्य प्रशंसा
5.	द्रव्यप्रशंसा
6.	दुर्जननिन्दा
7.	सुजन प्रशंसा
8.	परोपकार स्तुति
9.	धैर्य-गुणगान
10.	भाग्य
11.	पुरुषार्थ
	दूसरा खण्ड
	शृंगारशतक (पृष्ठ 37 - 67)
1.	मंगलाचरण
2.	स्त्री प्रशंसा
3.	भोगादि वर्णन
4.	वसन्त ऋतु वर्णन
5.	ग्रीष्म ऋतु वर्णन
6.	वर्षा ऋतु वर्णन
7.	शरद् ऋतु वर्णन
8.	हेमन्त ऋतु वर्णन
9.	शिशिर ऋतु वर्णन
10.	विषय भोग प्रशंसा
11.	यौवन प्रशंसा
12.	कामिनी वर्णन
	तीसरा खण्ड
	वैराग्य शतक (पृष्ठ 68 - 101)
1.	मंगलाचरण
2.	तृष्णा
3.	मद निन्दा
4.	भय वर्णन
5.	योग वर्णन
6.	सन्तोष
7.	बनवास प्रशंसा
8.	प्रभु ध्यान वर्णन
9.	मृत्यु अवश्य
10.	ब्रह्मज्ञानी
11.	वैराग्य

पहला खण्ड

नीतिशतक

दिक्कालाद्यनवच्छिन्नाऽनन्त-चिन्मात्र मूर्तये ।
स्वानुभृत्येकमानाय नमः शान्ताय तेजसे ।। 1 ।।

1. दशों दिशाओं और तीनों कालों में समान रूप से सामर्थ्यवान् रहने वाले, अनन्त परमात्मा और चेतनस्वरूप, केवल अनुभव से जानने योग्य, उस शान्त स्वभाव और तेजस्वी परमात्मा को बारम्बार नमस्कार है ।

अज्ञः सुखमाराध्यः सुखतरमाराध्यते विशेषज्ञः ।
ज्ञानलवदुर्विदग्धं ब्रह्मापि नरं न रंजयति ।। 2 ।।

2. अनजान व्यक्तियों को आसानी से सुधार सकते हैं, ज्ञानियों को अति सुख से अपना कर सकते हैं, परन्तु मूर्ख व्यक्तियों को ब्रह्मा भी नहीं सुधार सकता । अर्थात् सुधर पाना टेढ़ी खीर है ।

प्रसह्य मणिमुद्धरेन्मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात् ।
समुद्रमपि संतरेत्प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।।
भुजंगमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद्धारयेत् ।
न त प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ।। 3 ।।

3. व्यक्ति घड़ियाल के मुख से बलपूर्वक मणि निकाल सकता है और भयंकर लहरें उठती हों ऐसे दुस्तर सागर को भी तैर कर पार कर सकता है । क्रोधित सर्प को पुष्प की भाँति सिर पर धारण कर सकता है, परन्तु हठी मूर्खों के चित्त को नहीं मना सकता । यह सबसे कठिन कार्य है ।

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन् ।
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।।

कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेत् ।
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ।।4।।

4. चाहे यत्नपूर्वक बालू को पेलने से तेल प्राप्त हो जाये, प्यासा व्यक्ति मृगतृष्णा से जल प्राप्त करले और ढूँढने पर खरगोश के सींग मिल जायें, परन्तु हठी मूर्ख के चित्त को नहीं मना सकता । अर्थात् हठी मूर्ख को नहीं समझाया जा सकता ।

व्यालं बालमृणालतन्तुभिरसौ रोद्धुं समुज्जृम्भते ।
छेत्तुं वज्रमणीञ्छिरीषकुसुमप्रांतेन सन्नह्यते ।।
माधुर्य मधुबिन्दुना रचयितुं क्षाराम्बुधेरीहते ।
नेतुं वाञ्छति यः खलान्पथि सतां सूक्तैःसुधास्यंदिभिः ।।5।।

5. जो व्यक्ति दुष्टों को अपने ज्ञानोपदेश से सन्मार्ग पर लाना चाहता है वह व्यक्ति कोमल कमल-तंतु से हाथी को बाँधना चाहता है, फूल की पंखुड़ी से हीरे को बेधना चाहता है तथा शहद की बूँद से सागर का खारा पानी मीठा करना चाहता है । जो सम्भव नहीं है ।

स्वायत्तमेकान्तगुणं विधात्रा, विनिर्मितं छादनमज्ञतायाः ।
विशेषतः सर्वविदां समाजे विभूषणं मौनमपण्डितानाम् ।।6।।

6. मौन रहना अपने अधीन है, परमात्मा ने इसे अज्ञानता के ढकने के लिये बनाया है । विशेषतः करके चतुरों की सभा में यह मूर्खों का भूषण है । अर्थात् विद्वानों की सभा में मूर्खों का चुप रहना ही उनके लिए अच्छा है ।

यदा किञ्चिजज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्,
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः ।
यदा किञ्चित्किञ्चिद् बुधजनसकाशादवगतम्,
तदामूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः ।।7।।

7. अब मैं अल्पज्ञ था मदोन्मत हाथी की तरह मुझे यह अहंकार था कि मैं

बड़ा शक्तिशाली व सर्वज्ञ हूँ। परन्तु जब पण्डितों द्वारा मुझे कुछ ज्ञान प्राप्त हुआ, तब मुझे अपनी मूर्खता का ज्ञान हुआ और मेरा सारा अभिमान ज्वर की भाँति उतर गया।

कृमिकुलचितं लालाक्लिन्नं विगन्धिजुगुप्सितम्।
निरुपमरसं प्रीत्या खादन्नरास्थि निरामिषम्।।
सुरपतिमपि श्वा पार्श्वस्थं विलोक्य न शंकते।
न हि गणयति क्षुद्रो जन्तुः परिग्रहफल्गुताम्।।8।।

8. कीड़ों से युक्त, लार से भीगी, दुर्गन्धित, निन्दित और नीरस हड्डी को बड़े चाव से चबाता हुआ कुत्ता अपने समीप इन्द्र को खड़ा देख कर शंका नहीं करता। ठीक है नीच व्यक्ति जिस वस्तु को ग्रहण करते हैं, फिर उसकी निस्सारता नहीं देखते। उससे होने वाली हानि के विषय में नहीं सोचते विचारते।

शिरः शार्वं स्वर्गात्पतति शिरसस्तत्क्षितिधरम्।
महीध्रादुत्तुं गादवनिमवनेश्चापि जलधिम्।।
अधोऽधो गंगेयं पदमुपगतास्तोकमथवा।
विवेकभ्रष्टानां भवति विनिपातः शतमुखः।।9।।

9. गंगा गंगोत्री से निकल कर वहाँ से ऊँचे पहाड़ पर, फिर पहाड़ से पृथ्वी पर और इसी तरह क्रमशः नीचे गिरती-गिरती स्वल्प होते-होते सागर में गिरकर अदृश्य हो जाती है। अर्थात् अपने अस्तित्व को खो बढ़ती है। ठीक इसी भाँति विवेकभ्रष्ट लोग गिरते-गिरते नष्ट हो जाते हैं।

शक्यो वारयितुं जलेन हुतभुक् छत्रेण सूर्यातपो।
नागेन्द्रो निशितांकुशेन समदो दण्डेन गोगर्दभौ।।
व्यधिर्भेषजसंग्रहैश्च विविधैर्मन्त्रप्रयोगैर्विषम्।
सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहितं मूर्खस्य नास्त्यौषधम्।।10।।

10. जल से अग्नि का, छाते से धूप का, दण्ड से दुष्ट बैल और गधे का, मंत्र में दी गई विधि के प्रयोग से विष का और नाना प्रकार की औषधियों से रोगों का निवारण हो सकता है अर्थात् सबकी औषधि का विधान शास्त्र में है। परन्तु मूर्खों की कोई औषधि नहीं है। बिना औषधि के कोई इलाज नहीं है अर्थात् मूर्खों को समझाना बड़ा कठिन है।

साहित्य-संगीत कलाविहीनः साक्षात्पशुः पुच्छः विषाणहीनः।
तृणन्न खादन्नपि जीवमानस्तद्भागधेयं परमं पशूनाम्।।11।।

11. साहित्य, संगीत एवं कला से अपरिचित व्यक्ति बिना सींग और पूँछ के पशु के समान है। तृण न खाकर भी जीवित रहता है, यह प्राकृत देन ईश्वर की पशुओं के लिए बड़े सौभाग्य की बात है। कई पशु बड़े ही सहनशील हैं।

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता, मनुष्य रूपेण मृगाश्चरन्ति।।12।।

12. जिनमें विद्या, तप, दान, ज्ञान, शील, गुण तथा धर्म नहीं हैं वे पृथ्वी के ऊपर भारस्वरूप पशु समान ही हैं। जो मानव के रूप में इस धरा पर विचरते हैं।

वरं पर्वतदुर्गेषु भ्रान्तं वनचरैः सह।
न मूर्खजनसम्पर्कः सुरेन्द्रभुवनेष्वपि।।13।।

13. जंगल और पहाड़ों में जंगलियों के साथ रहना अच्छा है, परन्तु मूर्खों के साथ स्वर्ग में भी रहना अच्छा नहीं है। अर्थात् मूर्ख जंगली जानवरों से ज़्यादा खतरनाक है।

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा।
विख्याताः कवयो वसंति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः।।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य सुधियो ह्यर्थं विनापीश्वराः।
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षकाहि मणयो यैरर्घतः पातिताः।।14।।

14. जिनकी वाणी शास्त्रानुकूल शुद्ध है तथा शिष्यों को शास्त्रों का उपदेश देने वाले प्रसिद्ध कवि जिस राजा के राज्य में निर्धन रहते हैं, उस राजा की ही अप्रतिष्ठा है। क्योंकि कवि लोग तो बिना धन के ही सर्वश्रेष्ठ हैं। क्योंकि मणि का उचित मूल्य न लगाने वाला ही खोटा है न कि मणि। ज्ञानी पुरुष की उसके गुणों से पहचान है, निर्धन भी गुणी हो सकता है।

हर्तुर्याति न गोचरं किमपि पुष्णाति यत्सर्वदा।
ह्यर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति बृद्धिं पराम्।।
कल्पान्तेष्वपि न प्रयाति निधनं विद्याख्यमन्तर्धनम्।
येषां तान्प्रतिमानमुज्झत नृपाः कस्तैः सह स्पर्धते।।15।।

15. जो विद्या रूपी धन चोरों को भी दिखाई नहीं देता, सर्वदा सुख देने वाला, दान देने पर भी बढ़ने वाला और जिसका कभी भी नाश नहीं होता, वह विद्या रूपी धन जिन व्यक्तियों के पास है, हे राजा लोगो! तुम अपने धन का अहंकार न करो। उनके समान संसार में और धनी कौन है?

अधिगतपरमार्थान् पंडितान्मावमंस्था।
स्तृणमिव लघुलक्ष्मीर्नैव तान्संरुणद्धि।।
अभिनमदलेखाश्यामगण्डस्थलानाम्।
न भवति विसतन्तुर्वारणं वारणानाम्।।16।।

16. हे राजा! तत्त्ववेता पण्डितों का कभी अपमान न करो, क्योंकि उनको तुम्हारी तृष्णा के सदृश्य लघु लक्ष्मी कभी रोक न सकेगी। जैसे नूतन मद की धारा के समान शोभा देने वाले श्यामले मस्तक वाले हाथी को कमल की डंडी का सूत नहीं रोक सकता। ऐसे ही तत्त्ववेता विद्वानों को लक्ष्मी उनके पथ में रुकावट नहीं बन सकती। विद्या बल, धन बल से शक्तिशाली होता है।

अम्भोजिनीवनविहार विलासमेव ।
हंसस्य हन्ति नितरां कुपितो विधाता ।।
न त्वस्य दुग्धजल भेदविधौ प्रसिद्धाम् ।
वैदग्ध्यकीर्तिमहपहर्तुमसौ समर्थः ।। 17 ।।

17. क्रुद्ध ब्रह्मा हंसों का कमल वन का विहार एक दम नष्ट कर सकते हैं परन्तु दूध जल को पृथक् करने के प्रसिद्ध चातुर्य को नष्ट नहीं कर सकता । दूध पानी के मिश्रण को बिना गर्म किये अलग नहीं किया जा सकता, इसका भी ज्ञान होना चाहिए ।

केयूराणि न भूषयन्ति पुरुषं हारा न चन्द्रोज्ज्वलाः ।
न स्नानं न विलेपनं न कुसुमं नालंकृता मूर्द्धजाः ।।
वाण्येका समलंकरोति पुरुषं या संस्कृता धार्यते ।
क्षीयंते खलु भूषणानि सततं वाग्भूषणं भूषणम् ।। 18 ।।

18. बाजूबन्द और चन्द्रमा के समान उज्ज्वल मोतियों की माला, स्नान, चन्दन, लेपना, फूलों का शृंगार और संवारे हुए केश आदि व्यक्तियों को सुशोभित नहीं करते, अपितु व्याकरणयुक्त शुद्ध वाणी से सुसंस्कृत व्यक्तियों की ही शोभा होती है । क्योंकि भूषण तो नष्ट हो सकते हैं पर वेद वाणी रूप भूषण सदैव जगमगाता रहता है । विद्वान् सर्वत्र पूज्यते अर्थात् विद्वानों की सब जगह पूजा होती है ।

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं प्रच्छन्नगुप्तं धनम् ।
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता ।
विद्या राजसु पूज्यते न हि धनं विद्याविहीनः पशुः ।। 19 ।।

19. विद्या ही व्यक्ति की शोभा और छिपा हुआ धन है । विद्या ही भोग, यश और सुख को देने वाली है । विद्या गुरुओं का गुरु है । परदेश में विद्या ही भाई बन्धु होती है । विद्या सबसे बड़ी देवी है, राजा लोगों में विद्या ही की पूजा होती है, न कि धन की । अतः विद्या के बिना पुरुष पशु

समान है । विद्या धन सब धनों में सर्वश्रेष्ठ धन माना जाता है ।

क्षान्तिश्चेद् कवचेन किं किमरिभिः क्रोधोऽस्तिचेद्देहिनाम् ।
ज्ञातिश्चेदन लेन किं यदि सुहृद्दिव्यौषधैः किं फलम् ।।
किं सर्पैर्यदिदुर्जनाः किमु धनैर्विद्याऽनवद्या यदि ।
व्रिड़ोचेल्किं भूषणैः सुकविता यद्यस्ति राज्येन किम् ।।20।।

20. यदि क्षमा है तो कवच की क्या आवश्यकता है? यदि क्रोध है तो शत्रु का क्या प्रयोजन? यदि जाति है तो अग्नि का क्या काम? मित्र हो तो उत्तम औषधियों से क्या लाभ? दुर्जन हो तो सर्प का क्या काम? ईश्वरकृत वेद विद्या हो तो धन की क्या आवश्यकता है? शर्म हो तो गहनों से क्या मतलब? सुन्दर कविता हो तो राज्य से क्या प्रयोजन है? मनुष्य को दुर्गुणों को त्याग कर सद्गुण ही अपनाने चाहिये ।

दाक्षिण्यं स्वजने दया परिजने शाठ्यं सदा दुर्जनं ।
प्रीतिः साधुजने नयो नृपजने विद्वज्जनेष्वार्जवम् ।।
शौर्यं शत्रुजने क्षमा गुरुजने नारीजने धूर्तता ।
ये चैवं पुरुषाः कलासुकुशलास्तेष्वेव लोकस्थितिः ।।21।।

21. जो अपने लोगों पर उदारता, सेवकों पर दया, दुष्टों के साथ दुष्टता, साधुओं से प्रीति, राजसभा में नीति, पण्डितों से सरलता, शत्रुओं से शूरता, बड़े लोगों से क्षमा और स्त्रियों से धूर्तता का बर्ताव करते हैं, उन्हीं लोगों में लोकाचार स्थित है । अर्थात् उन्हीं लोगों की समाज में कीर्ति होती है ।

जाड्यं धियो हरति सिंचति वाचि सत्यम् ।
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।।
चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्तिम् ।
सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।।22।।

22. सत्संगति बुद्धि की मूर्खता को हरती, वचनों में सत्यता को खींचती, प्रतिष्ठा को बढ़ाती, पाप को दूर करती, चित्त को प्रसन्न करती और

दशों दिशाओं में कीर्ति को फैलाती है बताओ तो यह सत्-संगति व्यक्ति को क्या नहीं करती है। बुरी संगत व्यक्ति को बुराइयों में धकेल देती है, और सत्पुरुषों का संग ज़िन्दगी को सुधार देता है।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःक जरामरणजं भयम्।।23।।

23. जिनको नवों रस सिद्ध है, ऐसे पुण्यवान् कवीश्वरों की यशरूपी काया में जरा मरण का भय नहीं होता। सुकृत कर्म करने वाले का ईश्वर सहाय होता है, इसलिये उसे कोई भय नहीं।

सूनुः सच्चरितः सती प्रियतमा स्वामी प्रसादोन्मुखः।
स्निग्धं मित्रमवंचकः परिजनो निःक्लेशलेश मनः।।
अकारो रुचिरः स्थिरश्च विभवो विद्यावदान्तं मुखं।
तुष्टे विष्टपहारिणीष्टदहरौ संप्राप्यते देहिनां।।24।।

24. जिन पर भगवान् प्रसन्न हैं उन्हें ही सदाचारी पुत्र, पतिव्रता स्त्री, प्रसन्न होने वाला स्वामी, प्रेमी मित्र, नेक परिवार, क्लेशरहित चित्त, सुन्दर स्वरूप, स्थायी धन, विद्या से चमकता हुआ चेहरा प्राप्त होता है। ईश्वर किसी से प्रसन्न व अप्रसन्न नहीं होते, यह उसके शुभ कर्मों का फल होता है।

प्राणाघातान्निवृत्तिः परधनहरणे संयमः सत्य-वाक्यम्।
काले शक्त्या प्रदानं युवतिजनकथमूकभावः परेषां।।
तृष्णास्रोतोविभंगो गुरुष च विनयः सर्वभूतानुकम्पा।
सामान्यं सर्वशास्त्रेष्वनुपहतविधिः श्रेयसामेष पन्थाः।।25।।

25. जीव हिंसा से दूर रहना, पराये धन के हरण से डरना, सत्य बोलना, समयानुसार यथाशकित दान देना, पर-स्त्रियों की चर्चा में मौन रहना, तृष्णा के प्रवाह को रोकना, बड़े लोगों में नम्रता रखना, प्राणीमात्र पर दया करना, यही सब शास्त्रों में अप्रतिषिद्ध विधिवाला सर्वजन साधारण के कल्याण का मार्ग है। सत्यपथ, वेदमार्ग पथ ही

सुख-शान्ति और कल्याणकारक मार्ग है। सुखी रहने के लिए अपने आचरण वेदानुकूल बनाये।

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः।
प्रारभ्य विघ्ननिहिता विरमन्ति मध्याः।।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः।
प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति।।26।।

26. नीच व्यक्ति विघ्न-भय के कारण कार्य आरम्भ ही नहीं करते, मध्यम श्रेणी के व्यक्ति कार्य आरम्भ तो कर देते हैं परन्तु विघ्न पड़ जाने पर उसे बीच में ही छोड़ देते हैं, किन्तु उत्तम लोग बार-बार विघ्न पड़ने पर भी आरम्भ किये कार्य को नहीं छोड़ते। जो मनुष्य विघ्नों से न घबराते और अपने कर्त्तव्य को पूर्ण निष्ठा व पुरुषार्थ से साथ आरम्भ करते हैं, उनको ईश्वर कृपा से सफलता मिलती है। ईश्वर के सहाय के बिना कोई कार्य पूर्ण नहीं होता।

असंतो नाभ्यर्थ्याः सुहृदपि न याच्यः कृशधनः।
प्रिया न्याय्यावृत्तिर्मलिनमसुभंगेऽप्यसुकरम्।।
निपद्युच्चैः स्थेयं पदमनुविधेयं च महताम्।
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम्।।27।।

27. कंजूस और ग़रीब से श्रेष्ठ पुरुष किसी वस्तु की याचना नहीं करते और अपनी न्याययुक्त जीविका पर ही सन्तोष कर लेते हैं। प्राण जाने के भय से भी वे नीच कर्म नहीं करते। वे व्यक्ति विपत्ति में भी अपने श्रेष्ठ आचरण को कायम रहते हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि इस तलवार की धार रूपी कठिन व्रत पर अचल रहने की शिक्षा इनको स्वयं प्रभु ने ही दी है। ये गुण ईश्वर के उपासक में ही पाये जाते हैं, सबको ईश्वर की उपासना करनी चाहिये।

क्षुत्क्षामोऽपि जरा कृशोऽपि शिथिलप्रायोपि कष्टांदशा-
मापन्नोऽपि विपन्नदीधितिरपि प्राणेन् नश्यत्स्वपि।।

मत्तेभेन्द्रविभिन्नकुम्भकवलाग्रामैकबद्धस्पृहः ।
किं जीर्ण तृणमत्तिमानमहतामग्रेसरः केसरी ।। 28 ।।

28. मत्त गजराजों के मस्तक विदारने वाला सिंह क्या कभी भी भूख में शक्ति तेजहीन होने पर भी प्राणान्त के समय भी सूखी घास खाने में समर्थ हो सकेगा? अर्थात् नहीं खा सकता। परन्तु मनुष्य सब कुछ खा जाता है। मनुष्यों को पशुओं से भी शिक्षा लेनी चाहिये।

स्वल्पस्नायुवसावसेकमलिनं निर्मांसमप्यस्थिकं ।
श्वा लब्ध्वा परितोषमेति न तु तत्तस्य क्षुधाशांतये ।।
सिंहो जम्बुकमंकमागतमपि त्यक्तवा निहंति द्विपम् ।
सर्वः कृच्छ्रगतोऽपि वाञ्छति जनः सत्त्वानुरूपंफलम् ।। 29 ।।

29. कुत्ता लहू और चर्बी से सना हुआ एक मलीन हड्डी का टुकड़ा पाकर प्रसन्न हो जाता है, सिंह गोद में आये हुए सियार को छोड़ कर भी हाथी को मारता है। इससे यह सिद्ध होता है कि सभी प्राणी पुरुषार्थ के अनुसार ही फल की इच्छा करते हैं। परन्तु मनुष्य बिना पुरुषार्थ के ही सब कुछ पाना चाहता है।

लांगूलचालनमधश्चरणावपातम् ।
भूमौ निपत्य वदनोदरदर्शनं च ।।
श्वा पिण्डदस्य कुरुते गजपुंगवस्तु ।
धीरं विलोकयति चाटुशतैश्च भुङ्क्ते ।। 30 ।।

30. कुत्ता अपने रोटी देने वाले के आगे पूंछ हिलाकर, झुक कर और मुँह तथा पेट दिखाकर अनेक प्रकार की चापलूसी करता है, परन्तु हाथी अपने भोजन देने वाले की ओर गम्भीरता से देखता है और सैंकड़ों खुशामदों के बाद भोजन करता है। तभी कुत्ते को स्वामी भक्त कहते हैं।

परिवर्तिनि संसारे मृतः को वा न जायते ।
स जातो येन जातेन याति वंशः समुन्नतिम् ।। 31 ।।

31. इस परिवर्तनशील संसार में कौन नहीं जन्मता, मरता, परन्तु जन्म लेना उसी का सफल है जिसके पैदा होने से वंश उन्नति को प्राप्त हो। इसलिये मनुष्यों को अपनी सन्तान को अच्छे संस्कार देने चाहिये ताकि परिवार में सुख शान्ति कायम रहे।

कुसुमस्तवकस्येव द्वयी वृत्तिर्मनस्विनः।
मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य बिशीर्यते वनेऽथवा।।32।।

32. श्रेष्ठ पुरुषों की फूल की भाँति दो ही दशायें होती हैं या तो सब के सिर पर रहता है अथवा वन में ही मुरझा जाता है। जो श्रेष्ठ पुरुष फूल की भाँति सबका कल्याण करते हैं जैसे फूल सुगन्ध से दुर्गन्ध का नाश करके सबको लाभान्वित करते हैं उसी प्रकार श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा कल्याण के कार्यों के कारण सब उनका सम्मान करते हैं।

संत्यन्येऽपि बृहस्पति प्रभृतयःसंभाविताः पंचषा-
स्तान्प्रत्येष विशेषविक्रमरुची राहुर्न वैरायते।।
द्वावेव ग्रसते दिनेश्वरनिशाप्राणेश्वरौ भास्वरौ।
भ्रांतः पर्वणि पश्य दानवपतिः शीर्षावशेषाकृतिः।।33।।

33. भाइयो! परम पराक्रमी राहु केवल शिर ही रहने पर भी तेजपूर्ण चन्द्र और सूर्य को ग्रसता है और आसमान के बृहस्पति आदि ग्रहों को छूता भी नहीं। अर्थात् पराक्रमी लोग शत्रुता भी करते हैं तो तेजस्वी लोगों से ही करते हैं, छोटों से नहीं। अर्थात् अपने से छोटों को कभी हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।

वहति भुवनश्रेणिं शेषः फणाफणकस्थिताम्।
कमठपतिना मध्ये पृष्ठं सदा स षिधार्यते।।
तमपिकुरुते क्रोडाधीनं पयोधिस्नादरात्।
अहद महतां निःसीमानश्चरित्रवि भूतयः।।34।।

34. शेष जी अपने फनों पर चौदह भुवनों को धारण करते हैं और उन्हें

कच्छप अपनी पीठ पर लिये रहते हैं । परन्तु सागर उन कच्छप को भी बिना परिश्रम के गोद में रख लेता है । अहो ! श्रेष्ठ पुरुषों के चरित्र भी विचित्र होते हैं । चरित्रवान् व्यक्ति ही श्रेष्ठ पुरुषों में गिना जाता है ।

वरं पक्षच्छेदः समदमघवन्मुक्तकुलिश-
प्रहारैरुद्गच्छद्बहुलदहनोद्गारगुरुभिः ।।
तुषाराद्रेःसूनोरहह पितरि क्लेशविवशे ।
न चासो संपातः पयसि पयसां पत्युरुचितः ।। 35 ।।

35. हिमालय का पुत्र मैनाक का मद से गर्वित इन्द्र के चलाये हुए ज्वालामय चक्र की चोट से मर जाना उत्तम था, परन्तु अपने पिता हिमालय को दुःखी और संतप्त छोड़ कर सागर की शरण में जाकर अपना पक्ष बचाना उचित न था । माता-पिता से सन्तान कभी उऋण नहीं हो सकती ।

यदचेतनोऽपि पादैः स्पृष्टः प्रज्वलति सवितुर्मणिकांतः ।
तत्तेजस्वी पुरुषः परकृतनिकृतिं कथं सहते ।। 36 ।।

36. जब जड़ सूर्यकान्त मणि, सूर्य की किरणों के स्पर्श से चल उठता है, तब चेतन तेजस्वी पुरुष दूसरों के अपमान को भला क्यों कर सहन कर सकता है ? अर्थात् नहीं कर सकता । तेजस्वी पुरुष के लिये अपमान सम्मान से कोई फर्क नहीं पड़ता ।

सिंहशिशुरपि निपतति मदमलिनकपोलभित्तिषु गजेषु ।
प्रकृतिरियं सत्त्ववताम् खलु वयस्तेजसो हेतुः ।। 37 ।।

37. सिंह यद्यपि बच्चा होने पर भी मद से मत्त, क्रोध वाले हाथी को पछाड़ देता है । ठीक है, तेजस्वी स्वभाव से ही ऐसे होते हैं, अवस्था का इससे कोई संबंध नहीं । जैसे बड़ी आयु वाले से छोटी आयु वाला विद्वान् हो सकता है, इसका आयु से कोई सम्बन्ध नहीं है ।

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तस्याप्यधो गच्छतां ।
शीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निणना ।।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं ।
येनै केन बिना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ।।38।।

38. जाति रसातल को चली जाये, गुण समूह उससे भी नीचे चला जाये, शील पर्वत से गिर कर चकनाचूर हो जाये, वंश अग्नि में जल जाये, शत्रुरूपी शूरता पर वज्र पड़ जाये परन्तु हमारे पास केवल द्रव्य ही रह जाये। क्योंकि उसके बिना सभी गुण तृणवत् हैं। जैसे धन चला जाये, शरीर का कोई अंग चला जाये, तो कुछ गया और चरित्र चला गया तो सब कुछ चला गया, चरित्रवान् सबसे महान् व्यक्ति होता है।

तानीन्द्रियाणि सकलानि तदेव कर्म ।
सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव ।।
अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः स एव ।
त्वन्यः क्षणेन भवतीति विचित्रमेतत् ।।39।।

39. सम्पूर्ण इन्द्रियां, व्यवहार, प्रबल बुद्धि और वचन के एक रहते हुए भी धन की गर्मी के बिना व्यक्ति और का और हो जाता है। यह धन की महिमा विचित्र है। क्योंकि धन की आवश्यकता गर्भ में आने से मृत्यु तक पड़ती है।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पंडितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः, सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ते ।।40।।

40. जिसके पास धन है वही कुलीन, पण्डित, बहुश्रुत गुणज्ञ, सुवक्ता और दर्शन करने योग्य हैं। तात्पर्य यह है कि संसार के सभी गुण सुवर्ण में बसते हैं। संसार में धन का महत्त्व अधिक है, धन के बगैर जीवन यापन नहीं हो सकता।

दौर्मन्त्र्यान्नृपतिर्विनश्यति यतिः संगात् सुतो लालनाद्,
विप्रोऽनध्ययनात्कुलं कुतनयाच्छीलं खलोपसनात् ।

ह्रीर्मद्यादनवेक्षणादपि कृषिः स्नेहः प्रवासाश्रयान्-
मैत्री चाप्रणयात्समृद्धिरनयात्यागात्प्रमादाद्धनम् । । 41 । ।

41. दुष्ट मंत्रियों के मंत्र से राजा, विषयों के संसर्ग से योगी, मोह से पुत्र, न पढ़ने से ब्राह्मण, कुपुत्र से यश, दुष्टों के संसर्ग से शील, मद्यपान से लज्जा, बिना देखे खेती, परदेश में रहने से स्नेह, अभिमान से मैत्री, अनीति से ऐश्वर्य और प्रमादपूर्वक लुटाने से धन का नाश होता है। इसलिये सब दुर्गुण दुर्व्यसनों को त्याग देना चाहिए।

दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य ।
यो न ददाति न भुंक्ते तस्य तृतीया गतिर्भवति । । 42 । ।

42. दान, भोग और नाश धन की यही तीन गतियाँ हैं। जिस व्यक्ति ने न किसी को दान दिया और न ही स्वयं भोगा तो उसके धन की तीसरी गति होती है अर्थात् वह नष्ट हो जाता है। संसार में बहुत ऐसे लोग हुए हैं, न कभी ढंग का खाना खाया न ही ढंग के कपड़े पहने, सारा जीवन धन जोड़ कर मर जाते हैं।

मणिः शाणोल्लीढः समरविजयी हेति निहतो ।
मदक्षीणो नागः शरदि सरितः श्यामपुलिनाः । ।
कलाशेषश्चन्द्रः सुरतमृदिता बालबनिता ।
तन्निम्ना शोभन्ते गलितविभवश्चार्थिषु जनाः । । 43 । ।

43. शान से खरीदी हुई मणि, युद्ध में विजयी शूर, मदमस्त हाथी, शरद ऋतु की स्वच्छ नदी, दूज का चन्द्रमा, रति में दली सुन्दरी और दान देकर निर्धन हुए व्यक्ति यह सब दुर्बलता से ही शोभित होते हैं। मनुष्य शुभ कर्मों के करने से सम्माननीय होते हैं, वैसे निर्धन का कोई सम्मान नहीं करता।

परिक्षीणः कश्चित् स्पृहयति यवानां प्रसृतये ।
पश्चात् संपूर्णो गणयति धरित्रीं तृणससमाम् । ।

अतश्चानैकान्त्याद् गुरुलघुतयार्थेषु धनिना- ।
मवस्था वस्तूति प्रथयति च संकोचयति च । । 44 । ।

44. निर्धन व्यक्ति एक मुट्ठी जौ की इच्छा करता है, और फिर सम्पन्न होने पर पृथ्वी को तृण समझने लगता है। इस लिये यही दोनों अवस्थाएं व्यक्ति को बड़ा छोटा बनाती हैं तथा वस्तुओं को फैलाती और संकुचित करती हैं। निर्धन होने पर दुःखी और धनवान् होने पर कभी अभिमान नहीं करता वही श्रेष्ठ व्यक्तित्व वाला होता है।

राजन् दुधुक्षभि यदि क्षितिधेनुमेनां,
तेनाद्य वत्समिव लोकममुं पुषाण ।
तस्मिंश्च सम्यगनिशं परिपुश्यमाणे,
नानाफलैः फलति कल्पलतेव भूमिः । । 45 । ।

45. हे राजन्! यदि तुम पृथ्वी रूपी गऊ को दुहना चाहते हो तो बछड़े की तरह प्रजा-जनों का पोषण करो। जब यह प्रजा रूपी बछड़ा भली भाँति पाला जायेगा तब यह पृथ्वी कल्पलता की भाँति फल देगी। राजा को प्रजा का अच्छे प्रकार पालन व रक्षा करनी चाहिये। राजा का यही कर्त्तव्य है।

सत्याऽनृता च पुरुषा प्रियवादिनी च ।
हिंस्रा दयालुरपि चार्थपरा वदन्या । ।
नित्यव्यया प्रचुरनित्यानागमा च ।
वाराङ्गनेव नृपनीतिरनेकरूपा । । 46 । ।

46. वेश्या की भाँति राजनीति भी कहीं सत्य, कहीं झूठ, कहीं कठोर, कहीं प्रियभाषिणी, कहीं दयालु, कहीं हिंसक, कहीं संचय करने वाली और कहीं खर्च करने वाली होती है। राजनीति जब असत्य, झूठ में लिप्त होती है तो वह ज़्यादा समय तक स्थिर नहीं रह पाती।

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानाम् ।
दानं भोगो मित्र संरक्षणं च । ।

येषामेते षड्गुणा न प्रवृताः,
कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण ।। 47 ।।

47. आज्ञा, कीर्ति, ब्राह्मण-पालन, दान, भोग और मित्रों की रक्षा जो लोग नहीं कर सके, उनको राजा की सेवा का क्या फल मिला? अर्थात् कुछ भी नहीं। ईश्वर की आज्ञा का पालन करने से कीर्ति बढ़ती है।

यद्धात्रा निजभालपट्टलिखितं स्तोकं महद् वा धनम् ।
तत्प्राप्नोति मरुस्थलेऽपि नितरां मेरौ ततो नाधिकम् ।।
तद्धीरो भव वित्तवत्सु कृपणां वृत्तिर्वृथा मा कृथाः ।
कूपे पश्च पयोनिधावपि घटो गृह्णति तुल्यं जलम् ।। 48 ।।

48. विधाता ने जो कुछ ललाट में लिख दिया है उससे अधिक नहीं मिलता, चाहे मरुस्थल में जाओ या सुमेरू पर्वत पर। इसलिये हे मित्रो! सन्तोष करो किसी से भी याचना न करो, क्योंकि घड़े को चाहे कुँए में डालो चाहे सागर में, सभी स्थानों में बराबर ही जल निकलेगा। बूँद भी घट बढ़ नहीं सकता। जो कुछ हम कर्म करते हैं, वही हमारा भाग्य बनता है, परमात्मा केवल हमारे पाप-पुण्य का यथा योग्य फल देता है, न कम न उससे ज़्यादा। भाग्य के भरोसे बैठे रहना, मूर्खता है।

त्वमेव चातकाऽधारोऽसीति केषां न गोचरः ।
किमम्भोदवरास्माकं कार्पण्याक्तिः प्रतीक्ष्यते ।। 49 ।।

49. हे श्रेष्ठ मेघ! यह लोक में प्रसिद्ध है कि तुम्हीं एक मुझ चातक के आधार हो। फिर तुम हमारी दीनता की क्या बाट देखते हो? इसी प्रकार हे भगवान् तुम्हीं हमारी रक्षा का ध्यान रखते हो, तुम बिन हमारा रक्षक कौन है?

रे रे चातक सावधानमनसा मित्र क्षणं श्रूयता-
मम्भोदा बहवो हिसन्ति गगने सर्वेपि नैतादृशाः ।
केचिद् वृष्टिभिरार्द्रयन्ति वसुधां गर्जन्ति केचिद् वृथा,
यं यं पश्यसि तस्य तस्य पुरतो मा ब्रूहिदीनं वचः ।। 50 ।।

50. अरे पपीहे ! क्षण भर सावधान होकर मेरी बात सुन, आकाश में बहुत से बादल हैं परन्तु सभी ऐसे नहीं हैं, जो बरस कर तुझे तृप्त कर सकें। बहुत तो उनमें ऐसे हैं जो व्यर्थ गरज कर ही चले जाते हैं। इसलिये हे मित्र ! जिसको तुम देखो, उसके ही आगे दीनता न दिखाओ। सब कार्य सोच विचार कर ही करने चाहिये।

अकरुणत्वमकारणविग्रहः परधने परयोषिति च स्पृहा।
सुजनबन्धुजनेष्वसहिष्णुता प्रकृतिसिद्धमिदंहिदुरात्मनाम्।।51।।

51. निर्दयता, अकारण वैर करना, दूसरे के धन और स्त्री की सर्वदा इच्छा करना, अपने परिवार और मित्रों की सहायता न करना यह दुष्टोंकी स्वाभाविक आदत है। ऐसे दुष्ट लोगों से सावधान रहना ही सबके हित में है। विनाशकों का काम ही विनाश करना होता है।

दुर्जनः परिहर्तव्यो विद्ययाऽलंकृतोऽपि सन्।
मणिनाभूषितः सर्पः किमसौ न भयंकर।।52।।

52. यदि दुष्ट विद्वान् भी हों, तो भी त्यागने योग्य है। क्या मणि वाला सर्प भयंकर नहीं होता? दुष्ट विद्वान् भी हो सकते हैं, जैसे रावण चारों वेदों का ज्ञाता था।

जाडयं ह्रीमती गण्यते व्रतरुचौ दम्भः शुचौ कैतवम्।
शूरे निर्घृणता मुनौ विमतिता दैन्यं प्रियालापिनि।।
तेजसिवन्यवलिप्तता मुखरता वक्तर्यशक्तिः स्थिरे।
तत्को नाम गुणो भवेत्स गुणिनां यो दुर्जनैर्नांकितः।।53।।

53. दुष्ट लोग लज्जावान् को जड़, व्रतधारी को दम्भी, पवित्र को कपटी, वीर को निर्दयी, सीधे को मूर्ख, प्रियवादी को दीन, तेजस्वी को घमंडी, वक्ता को बकवादी और स्थिर चित्त वाले को आलसी आदि दोष गुणियों को लगा ही देते हैं। मनुष्य को अपने दोष दिखाई नहीं देते, वह दूसरों में दोष, निकालता रहता है। यह अच्छी आदत नहीं है।

लोभश्चेदगुणेन किं पिशुनता यद्यस्ति किं पातकैः ।
सत्यं चेत्तपसा च किं शुचिमनो यद्यस्ति तीर्थेन किं ।।
सौजन्यं यदि किं जनैः सुमहिमा यद्यस्ति किं मंडनैः ।
सद्विद्या यदि किं धनैरपयशेयद्यस्ति किं मृत्युना ।। 54 ।।

54. लोभी व्यक्ति में और अवगुण क्या चाहिये, जो कुटिल है उसे पाप की क्या आवश्यकता; सत्यवक्ता को तप की क्या आवश्यकता, यदि चित्त शुद्ध हो तो तीर्थों से क्या लाभ, सज्जन पुरुष को मित्रों की क्या कमी, यश हो तो भूषणों की क्या आवश्यकता, विद्यावान् को धन की क्या कमी, यश हो तो भूषणों की क्या आवश्यकता, विद्यावान् को धन की क्या इच्छा और जिसका सर्वत्र अपयश है उसको मृत्यु की क्या आवश्यकता? अर्थात् दुष्ट कार्यों से अपयश मिलता है, और अपयश व्यक्ति मृत के समान है ।

शशो दिवसधूसरो गलितयौवना कामिनी ।
सरो विगतवारिजं मुचामनक्षरं स्वाकृतेः ।।
प्रभुर्धनपरायणः सततदुर्गतः सज्जनो ।
नृपांगणगतः खलो मनसि सप्त शल्यानि मे ।। 55 ।।

55. दिन का मलीन चन्द्रमा, यौवन-हीन स्त्री, कमलरहित सरोवर, सुन्दर रूपवाला मूर्ख, धनी कृपण, सज्जन दरिद्री और राजसभा में दुष्ट, ये सब हमारे हृदय में कांटे से भी अधिक चुभते हैं । इसलिय उक्त बुराइयों से बचने में सब का हित है ।

न कश्चिच्चण्डकोपानामात्मीयो नाम भूभुजाम् ।
होतारमपि जुह्वानं स्पृष्टो दहति पावकः ।। 56 ।।

56. क्रोध करने वाले राजा अपने मित्र को भी नहीं छोड़ते जैसे होता को भी यदि अग्नि छू जाये तो जला ही देती है । क्रोध, अग्नि अन्दर-अन्दर से जला डालती है, उससे अपना ही नुकसान है । स्वयं का खून जलता है ।

मौनान्मूकः प्रवचनपटुर्वातुलो जल्पको वा ।
धृष्टः पार्श्वे वसति च तदा दूरतश्चाऽप्रगल्भः ।।
क्षांत्या भीरुर्यदि न सहते प्रायशो नाभिजातः ।
सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः ।। 57 ।।

57. सेवक मौन रहने पर गूंगा, वक्ता होने पर बावला, पास रहने पर ढीठ, दूर रहने पर मूर्ख, क्षमा करने पर डरपोक और न सहने पर कुलहीन हो जाता है । तात्पर्य यह कि सेवा-धर्म बड़ा ही कठिन है । इसे योगी लोग भी नहीं समझ पाते । दूसरों के लिये कल्याणकारी कार्य करना ही सबसे बड़ी सेवा है ।

उद्भासिताखिलखलस्य विशृंखलस्य
प्राग्जातविस्मृतनिजाधमकर्मवृत्तेः ।
दैवादवाप्तविभवस्य गुणाद्विषोऽस्य ।
नीचस्य गोचग्गतैः सुखमाप्यते कैः ।। 58 ।।

58. पूर्व जन्म के अधर्म कर्म करने वाले दुष्ट, धनी और गुणों से द्वेष रखने वाले नीचों के वश में रहकर किसने सुख पाया है ? पाप-पुण्य का फल ईश्वर देता है, पाप ईश्वर किसी के क्षमा नहीं करता, इसलिये पाप कर्मों से बचना चाहिये ।

आरम्भगुर्वी क्षयिणी क्रमेण ।
लध्धी पुरा वृद्धिमती च पश्चात् ।
दिनस्य पूर्वार्द्धपरार्द्ध भिन्ना ।
छायेव मैत्री खल सज्जनानाम् ।। 59 ।।

59. दिन के पहले और पिछले आधे भाग में भिन्न-भिन्न रूप से रहने वाली छाया के समान दुष्टों और सज्जनों की मित्रता आरम्भ में बढ़ती फिर क्रमशः कम होने वाली तथा पहले छोटी फिर बाद में बढ़ने वाली है । अर्थात् मनुष्य में समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है, सदा एक

जैसी प्रवृत्ति नहीं होती ।

मृगमीनसज्जनानां तृणजलसंतोषविहितवृत्तीनाम् ।
लुब्धकधीवरपिशुना निष्कारणमेव वैरिणो जगति ।।60।।

60. मृग, मछली और सज्जन ये तीनों तृण, जल और सन्तोष पर ही अपनी जीविका निर्धारित करते हैं । परन्तु व्याध, केवट और कुटिल लोग उनसे अकारण शत्रुता करते हैं । दूसरों को देख कर वैर भाव नहीं रखना चाहिये, कुटिल लोग शत्रुता रखते हैं ।

सम्पत्सु महतां चितं भवेत्युत्पलकोमलम् ।
आपत्सु च महाशैलशिलासङ्घातकर्मशम् ।।61।।

61. सम्पत्ति में महात्माओं का चित्त कमल से भी कोमल रहता है और वही विपत्तिकाल में पहाड़ की भाँति कठिन हो जाता है । जीवन में आवश्यकता धन दौलत की भी होती है, परन्तु ज़्यादा लगाव नहीं रखना चाहिये । पुरुषार्थ से अर्जित धन ही अर्थ होता है ।

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता ।
विद्यायां व्यसनं स्वयोर्षित रतिर्लोकापवादाद भयम् ।।
भक्तिः शलिनि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले ।
एते येषु वसंति निर्मलगुणस्तेभ्यो नरेभ्यो नमः ।।62।।

62. सत्संगति की इच्छा, गुणों के प्रति बड़ों से नम्रता, विद्या में व्यसन, अपनी स्त्री से प्रेम, लोकनिन्दा से भय, परमात्मा में भक्ति, आत्मा की दमन करने की शक्ति और दुष्टों के संग का त्याग ये निर्मल गुण जिन पुरुषों में हैं उनको नमस्कार है । विद्वान् और गुणी लोगों का सब जगह सम्मान होता है ।

विपति धैर्यमथाभ्युदये क्षमा ।
सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः ।।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ ।
प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम् ।।63।।

63. विपत्ति में धैर्य, ऐश्वर्य में क्षमा, सभा में वचन चातुर्य, युद्ध में पराक्रम, यश में रुचि और शास्त्रों का अध्ययन ये बातें महापुरुषों में स्वाभाविक ही होती हैं। यह पूर्व जन्मों के संस्कार होते हैं, कुछ वर्तमान के कर्म फल होते हैं। यह सहनशीलता, धैर्यता ईश्वर कृपा से प्राप्त होती है। ईश्वर के कृपा पात्र बनें।

प्रदानं प्रच्छन्नं गृहमुपगते सम्भ्रमविधिः।
प्रियं कृत्वा मौनं सदसि कथनं चाप्युपकृतेः।।
अनुत्सेको लक्ष्म्यां निरभिभवसाराः परकथाः।
सतां केनोद्दिष्टं विषममसिधाराव्रतमिदम् ।।64।।

64. गुप्त दान देना, आर्य पुरुषों का स्वागत करना, उपकार करके चुप रहना, कृतज्ञता प्रकट करना, धन पाकर अभिमान न करना और पराई चर्चा में उसके मानापमान का ध्यान रखना, ये तलवार की धार के समान कठिन व्रत का सत्पुरुषों को न मालूम किसने उपदेश दिया है? यह उपदेश ईश्वर ने वेदों के द्वारा दिया है। वेद पढ़ें।

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता।
मुखे सतया वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम्।।
हृदिस्वच्छा वृत्तिः श्रुतमधिगतं च श्रवणयो-
र्विमाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम्।।65।।

65. दान देने से हाथ, सत्पुरुषों के चरणों में झुकने से मस्तक, मुख सत्य भाषण से, भुजायें बल से, हृदय स्वच्छता से, कान शास्त्र सुनने से बड़ाई के योग्य होते हैं। यही महात्माओं के अमूल्य आभूषण है। अर्थात् पवित्र आत्माओं के सत्संग से व वेद शास्त्रों के पढ़ने से ये गुण प्राप्त होते हैं।

संतप्ताऽयसि संस्थितस्य पथसो नामापि न ज्ञायते।
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।।

स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते ।
प्रायेणाधममध्यमोत्तसमगुणः संसर्गतो देहिनाम् । । 66 । ।

66. गर्म लोहे पर पानी पड़ने से पानी जल कर नष्ट हो जाता है, वही पानी की बूँद कमलपत्र पर पड़ने से मोती की भाँति चमकती है और फिर वही बूँद स्वाति नक्षत्र में सागर की सीपी में पड़ने से मोती हो जाती है । इससे सिद्ध होता है कि प्रायः उत्तम मध्यम आदि गुण संसर्ग से होते हैं । अर्थात् सत्यपुरुषों के सत्संग से उत्तम गुण और दुष्ट नीच पुरुषों की संगति से दुर्गुण प्राप्त होते हैं ।

यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितं स पुत्रो ।
यद्भर्तुरेव हितमिच्छति तत्कलत्रम् । ।
तन्मित्रमापदि सुखे च समक्रियं यत् ।
एतत्त्रयं जगति पुण्यकृतो लभन्ते । । 67 । ।

67. ऐसे पुत्र जो आचरण से अपने पिता को खुश रक्खें, पति का निरन्तर हित चाहने वाली स्त्री, और दुःख सुख में समान भाव रखने वाले मित्र ये पुण्यवान् पुरुषों को ही मिलते हैं । वे पुरुष भाग्यशाली हैं, जिन्हें सुपुत्र, संस्कारी स्त्री व साथ निभाने वाले मित्र मिलते हैं ।

एको देवः केशवो वा शिवो वा ।
एकं मित्रं भूपतिर्वा यतिर्वा । ।
एको वासः पत्तने वा वने वा ।
एको नारी सुन्दरी वा दरी वा । । 68 । ।

68. केवल एक ईश्वर को इष्ट देव मानना चाहिये, वही शिव है उसके अनेक गुणात्मक नाम हैं । सबका ईष्ट देव एक ही होना चाहिये । चाहे राजा हो या फक़ीर एक ही स्थान पर रहने चाहिये चाहे वह जंगल में हो या नगर में और एक विवाहिता नारी से प्रेम करो चाहे वह सुन्दरी हो या कुरूपा हो । आशय यह है कि एक से ही मनोयोग होना चाहिये । ये नियम ईश्वर के बनाये हुए हैं, इनका पालन प्रत्येक को करना चाहिये ।

नम्रत्वेनोन्मन्तः परगुणकथनैः स्वान् गुणान्ख्यापयन्तः ।
स्वार्थान सम्पादयन्तो विततप्रथुतरारम्भयत्नाः परार्थे ।।
क्षान्त्यैवाक्षेपरूक्षाक्षरमुखरमुखान् दुर्जनान् दूषयन्तः ।
सन्तः साश्चर्यचर्य्या जगति बहुमताः कस्य नाभ्यर्चनीयाः ।।69।।

69. नम्रता से उच्च होते हैं, दूसरों की प्रशंसा करके अपनी गुणग्राहकता का परिचय देते हैं, परोपकार करते हुए, अपने कार्य का सम्पादन करते हैं और निन्दक तथा कुटिल लोगों को क्षमा से दूषित कर देते हैं, ऐसे शुभाचरण वाले माननीय सन्त संसार में किसके पूजनीय नहीं होते? अर्थात् सभी उनकी पूजा करते हैं। विद्वान् सर्वत्र पूज्यते अर्थात् विद्वानों का सब सम्मान करते हैं।

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमै-।
र्नवाम्बुभिर्भूमिबिलम्बिनो घनाः ।।
अतुद्धताः सत्यपुरुषाः समृद्धिभः ।
स्वभाव एवैष परोपकारिणाम् ।।70।।

70. जिस प्रकार फल आने पर वृक्ष नम जाते हैं, नवीन जल भरने से मेघ नम जाते हैं, वैसे ही सत्पुरुष भी सम्पत्ति पाकर नम्र ही हो जाते हैं। मनुष्यों को प्रकृति के पदार्थों से बहुत शिक्षा मिलती है, जैसे गुलाब कांटों से घिरा होने पर भी खिल रहा है, वैसे वैसे मनुष्य को भी दुर्जनों में रहते हुए भी गुलाब की तरह मुस्काते रहना चाहिए।

श्रोतं श्रुतेनैव न कुण्डलेन दानेन पाणिर्न तु कंकणेन ।
विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन ।।71।।

71. कान की शोभा शास्त्र श्रवण से ही होती है कुण्डलों से नहीं, हाथों की शोभा दान से है न कि कंकण पहनने में, इसी प्रकार दयालु पुरुषों का शरीर उपकार से शोभित होता है चन्दन से नहीं। विद्वान् सर्वत्र शोभते, अर्थात् विद्वान् सभा की शोभा बढ़ाता है।

पापान्निवारयति योजयते हिताय,
गुह्यं निगूहति गुणान प्रकटी करोति ।

आपद्गतं च न जहाति ददाति काले,

सन्मित्रलक्षणमिदं प्रवदन्ति सन्तः ।। 72 ।।

72. मित्र को पाप से अलग कर कल्याण के मार्ग में लगाये, उसकी गुप्त बातों को छिपावे, गुणों को प्रगट करे और आपत्ति काल में भी उसका साथ न छोड़े तथा यथाशक्ति उसकी धन से भी सहायता करे। यही सच्चे मित्र के लक्षण हैं। सच्चा मित्र वही होता है जो विपत्ति में उसका साथ न छोड़े। मित्रता हो तो श्री कृष्ण श्री सुदामा जैसी हो।

पद्माकरं दिनकरो विकचं करोति।

चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।।

नाभ्यर्थिनो जलधरोऽपि जलं ददाति।

सन्तः स्वयं परहिते, सुकृताभियोगः।। 73 ।।

73. बिना मांगे ही सूर्य कमलों को विकसित करता है, चन्द्रमा कैरवों के समूह को प्रफुल्लित करता है और मेघ भी वर्षा करते हैं। उसी प्रकार संत लोग भी बिना किसी के कहे ही लोगों की भलाई करते हैं। ईश्वर बिन मांगें ही सब कुछ देता है और किसी से उसका मूल्य नहीं मांगता। ईश्वर जैसा दानी कोई नहीं है। सारी प्रकृति जीवों को दान में दे रखी है।

एते सत्पुरुषाः परार्थघटकाः स्वार्थ परित्यज्य ये।

सामान्यास्तु परार्थमुद्यमभृतः स्वार्थाविरोधन ये।।

तेऽमी मानुपराक्षसाः परहितं स्वार्थाय निघ्नन्ति ये।

ये तु घ्नन्ति निरर्थकं परहितं ते के न जानीमहे।। 74 ।।

74. उत्तम पुरुष वे हैं जो बिना किसी स्वार्थ के दूसरों की भलाई करते हैं, मध्यम श्रेणी के लोग वे हैं जो अपने स्वार्थ से परोपकार करते हैं और जो अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का काम बिगाड़ते हैं उन्हें तो व्यक्तियों में राक्षस स्वरूप समझना चाहिये और जो अकारण ही दूसरों के कार्य की हानि करते हैं वे कौन हैं यह मैं नहीं जान सकता। इस संसार में

मानव और दानव (राक्षस) सृष्टि के आरम्भ से ही होते आये हैं, कभी दानवों की संख्या बढ़ जाती है, कभी मानवों की संख्या बढ़ जाती है ।

कर्मायत्तं फलं पुंसां बुद्धिः कर्मानुसारिणी ।
तथापि सुधिया भाष्यं सुविचार्यैव कुर्वता ।। 75 ।।

75. पुरुषों को कर्म के अनुसार ही फल मिलता है और बुद्धि भी कर्मानुसार होती हैं परन्तु फिर भी विद्वानों को सोच विचार करके ही कर्म करना चाहिये । कहावत भी है कि बिना विचारे जो करे, वो पीछे पछताय, इसलिये सब कार्य सोच विचार कर ही करने चाहिए, ताकि पीछे पछताना ना पड़े ।

क्षीरेणात्मगतोदकाय हि गुणा दत्ताः पुरा तेऽखिलाः ।
क्षीरोत्तापमवेक्ष्य तेन पयसा स्वात्मा कृशालौ हुतः ।।
गन्तुं पावकमुन्मनस्तद्भवद् दृष्ट्वा तु मित्रापदम् ।
युक्तं तेन जलेन शम्यति सतां मैत्री पुनस्त्वीदृशी ।। 76 ।।

76. पहले दूध ने अपने में मिलाये गये पानी को अपने सभी गुण दे दिये, फिर जब दूध आग पर रखा गया उस समय दूध जलता देख कर पानी ने अपने को आग में जला दिया । अपने मित्र का नाश देख कर दूध आग में जाने के लिए व्याकुल हो गया । परन्तु पुनः पानी के मिलने पर शान्त हुआ । अहा ! सज्जनों की मित्रता ऐसे ही होती है । मनुष्यों को दूध-पानी की मित्रता से शिक्षा लेनी चाहिये, क्रोध की अग्नि को पानी शान्त करता है ।

इतः स्वपिति केशवः कुलमितस्तदीयद्विषा-
मितश्च शरणार्थिनां शिखरिणां गणाः शेरते ।।
इतोऽपि बड़वानलः समस्तसंवर्तकै-
रहो विततमर्जितं भरसहं च सिंधोर्वपुः ।। 77 ।।

77. सागर में एक ओर केशव विश्राम कर रहे हैं; दूसरी ओर पहाड़ खड़े हैं और समीप ही बड़वानल भी जल रहा है, परन्तु सागर को कुछ भी

चिन्ता नहीं है क्योंकि वह विशालकाय और बलवान् है । इसी प्रकार सागर की भाँति सत्पुरुष भी गम्भीर होते हैं । मनुष्य का सागर जैसा विशाल दिल और पहाड़ जैसा दृढ़ निश्चल निश्चय होना चाहिये ।

तृष्णां छिन्धि भज क्षमां जहि मदं पापे रतिं मा कृधाः ।
सत्यं ब्रूह्यनुयाहि साधुपदवीं सेवस्य विद्वज्जनान् । ।
मान्यान मानय विद्विषोष्यनुनय प्रच्छादय स्वान् गुणान् ।
कीर्तिं पालय दुःखिते कुरु दयामेतत्सतां लक्षणम् । । 78 । ।

78. लोभ को छोड़ना, क्षमा करना, गर्व का त्याग, पाप से शत्रुता, सत्य का आचारण, निज मर्यादा में रहना, विद्वानों की शरण, मान्यजनों का मान करना, वैरियों को भी प्रसन्न रखना, कीर्ति स्थिर रखते हुए अपने गुणों को छिपाना, दीनों पर दया करना आदि सारे लक्षण सत्पुरुषों का है । ये सब गुण पूर्व जन्म के संस्कारों व माता-पिता, गुरु, आचार्य की शिक्षा से आते हैं । सत्य की पालना से सत्पुरुष कहलाता है ।

मनसि वचसि काये पुण्यपीयूषपूर्णा-
स्त्रिभुवनमुपकारश्रेणिभिः प्रीणयन्तः । ।
परगुणपरमार्थान्पर्वतीकृत्य नित्यम् ।
निजहृदि विकसन्तः सन्ति संतः कियन्त । । 79 । ।

79. मन, वचन और शरीर में भरे तल बराबर पुण्य-रूपी अमृत को पर्वत के समान बढ़ाकर त्रिभुवन को उपकारों से सन्तुष्ट करने वाले सज्जन संसार में कुछ ही होते हैं । प्रायःदेखने में आता है कि संसार में सज्जन कम और दुर्जन अधिक देखने में आते हैं ।

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः ।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्य कृत्वा नावसीदति । । 80 । ।

80. व्यक्ति के शरीर में आलस्य जैसा शत्रु और परिश्रम जैसा कोई दूसरा मित्र नहीं है । आलसी को विद्या कहाँ ? बिना विद्या के धन कहाँ ? और बिना धन के मित्र कहाँ ? बिना मित्रों के सुख कहाँ ? अतः आलस्य छोड़े यही सबसे बड़ा शत्रु है ।

किं तेन हेमगिरिणा रजताद्रिणा वा ।
यत्राश्रिताश्च तरवस्तरवस्त एव ।।
मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण ।
कंकोलनिम्बकुटजा अपि चन्दनाः स्युः ।।81।।

81. हमको सुवर्ण के सुमेर और चांदी के कैलाश से कुछ प्रयोजन नहीं है, जिनके आश्रित वृक्ष जैसे के तेसे ही बने रहते हैं । हम तो मलयागिरी को श्रेष्ठ मानते हैं कि जहाँ कंकोल, नीम और कुटज के वृक्ष भी चन्दन हो जाते हैं ।

रत्नैर्महाब्धेस्तुतुषुर्न देवाः ।
न भेजिरे भीमविषेण भीतिम् ।।
सुधां विना न प्रययुर्विरामम् ।
न निश्चितार्थाद्विरमन्ति धीराः ।।82।।

82. देवता लोग अनमोल रत्न पाकर भी सन्तुष्ट नहीं हुए तथा भयंकर विष से भी नहीं डरे । वे बिना अमृत पाये रुके नहीं । ऐसे ही धीर पुरुष भी बिना अभीष्ट सिद्ध हुए कार्य नहीं छोड़ते । सबका भला चाहने वाले ही देवता कहलाते हैं, उन्हें किसी प्रकार का लालच नहीं होता, वे कठिनाइयों से नहीं घबराते हैं ।

क्वचिद् भूमौ शय्या क्वचिदपि च पर्यङ्कशयनम् ।
क्वचिच्छाकाहारः क्वचिदपि च शाल्योदनरुचिः ।।
क्वचित्कन्थाधारी क्वचिदपि च दिव्याम्बरधरो ।
मनस्वी कार्यार्थी न गणयति दुःखं न च सुखम् ।।83।।

83. जो लोग विवेकी और पुरुषार्थी होते हें वे सुख-दुःख को चिन्ता नहीं करते । मौका पड़ने पर कभी तो भूमि पर ही सो रहते हैं और कभी पलंग पर शयन करते हैं । कभी साग-पात पर ही निर्वाह करते हैं और कभी चावल के भात का भोजन करते हैं । समय आने पर कभी तो गुदड़ी ओढ़ कर दिन बिताते हैं तो कभी सुन्दर वस्त्र भी धारण करते हैं

अर्थात् महापुरुष सुख दुःख में एक समान रहते हैं, दुःख आने पर दुःखी नहीं होते, सुख आने पर खुश नहीं होते ।

ऐश्वर्यस्य विभूषणं सुजनता शौर्यस्य वाक्संयमो ।
ज्ञानस्योपशमः श्रुतस्य विनयो वित्तस्य पात्रे व्ययः ।।
अक्रोधतपसः क्षमा प्रभवितुर्धर्मस्य निर्व्याजता ।
सर्वेषामपि सर्वकारणमिदं शीलं परं भूषणम् ।। 84 ।।

84. ऐश्वर्य का भूषण सज्जनता, शूरता का वाक्संयम, ज्ञान का शान्ति, शास्त्र पढ़ने का क्षमा, धर्म का निश्चलता और सब गुणों का आभूषण केवल शील है । अर्थात् सज्जनता, संयम, शान्ति, निश्चलता ही जीवन का सर्वोत्तम आभूषण है, ये गुण वेद विद्वानों में पाये जाते हैं ।

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु ।
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा ।
न्यायात्पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ।। 85 ।।

85. नीतिपारंगत चाहे प्रशंसा करें या निन्दा; धन अपने आप आवे या जाये, आज मरें या कल्पान्त में, परन्तु धीर लोग न्याय के मार्ग से एक पग भी नहीं हटते । अर्थात् न्याय प्रिय पुरुष निन्दा, अपमान, यश, अपयश, हानि-लाभ, मृत्यु भय की चिन्ता नहीं करता, वह अन्याय किसी के साथ नहीं कर सकता ।

भग्नाशस्य करण्डपीडिततनोर्म्लानेन्द्रियस्य क्षुधा ।
कृत्वाऽऽखुर्विवरं स्वयं निपतितो नक्तं मुखे भोगिनः ।।
तृप्तस्तत्पिशितेन सत्वरमसौ तेनैव यातः पथा ।
लोकाः पश्चत देवमेव हि नृणां वृद्धौ क्षये कारणम् ।। 86 ।।

86. जीवन से निराश, भूख से व्याकुल सर्प पिटारे में बंद हैं । रात को चूहा उस पिटारे में छेद करके पहुँच जाता है और स्वयं उस भूखे सर्प का

भोजन बन जाता है । फिर वह सर्प अपनी भूख मिटा कर उसी छेद द्वारा बाहर निकल जाता है । देखो क्षय और वृद्धि का करण दैव ही है । इससे ज्ञात होता है कि ईश्वर की लीला को कोई नहीं जानता, जीव जीव का भक्षक भी है और रक्षक भी ।

छिन्नोऽपि रोहति तरुः क्षीणोप्युपचीयते पुनश्चन्द्रः ।
इति विमृशन्तः सन्तः संतप्यन्ते न विलुप्ता लोके । । 87 । ।

87. काटा हआ वृक्ष फिर पनपता है, क्षीण चन्द्रमा फिर पूरा हो जाता है, यही देख सन्त लोग विपत्ति से नहीं घबड़ाते । ज्ञान दो प्रकार से होता है, एक प्रकृति के पदार्थों को देखने और मनन करने से और दूसरा वेदशास्त्रों के पढ़ने व विद्वानों के उपदेशों से ।

नेता यस्य बृहस्पतिः प्रहरणं वज्रं सुराः सैनिकाः ।
स्वर्गो दुर्गमनुग्रहः किल हरेरैरावतो धारणः । ।
इत्यैश्वर्य बलान्वितोऽपि बलिभिद्भग्नः परैः संगरे ।
तद्व्यक्तं वरमेव दैवशरणं धिग्धिग्वृथा पौरुषम् । । 88 । ।

88. बृहस्पति जिनके मन्त्री, वज्र जिनका शस्त्र, देवताओं की सेना, स्वर्ग जैसा गढ़, ऐरावत की सवारी, विष्णु की पूर्ण कृपा प्राप्त करके भी महा ऐश्वर्यशाली इन्द्र युद्ध में हारते ही रहे । इस से सिद्ध हुआ कि भाग्य ही सब कुछ है, पुरुषार्थ व्यर्थ है । पुरुषार्थ कभी व्यर्थ नहीं होता, पुरुषार्थ से ही भाग्य बनता है, हारने के अनेक कारण हो सकते हैं, केवल किसी की कृपा से ही जीत नहीं हो जाती, जीतने के लिए भी पुरुषार्थ, सामर्थ्य चाहिए ।

खल्वाटो दिवसेश्वरस्य किरणैः संतापितो मस्तके ।
वाच्छं देशमनातपं विधिवशात्तालस्य मूलं गतः । ।
तत्राप्यस्य महाफलेन पतता भग्नं सशब्दं शिरः ।
प्रायो गच्छति यत्र भाग्यरहितस्तत्रैव यान्त्यापदः । । 89 । ।

89. गंजे व्यक्ति का सिर सूर्य की किरणों से तपने लगा वह छाया की इच्छा करके एक ताड़ के वृक्ष के नीचे गया। वहाँ ऊपर से एक ताड़ का फल उसके ऊपर आ पड़ा जिससे कि उसका सिर फट गया। प्रायः भाग्यहीन जहाँ जाता है विपत्ति भी साथ ही जाती है।

शशि दिवाकरयोर्ग्रह पीडनम्,
गजभुजङ्गयोरपि बन्धनम्।।
मतिमतां च विलोक्य दरिद्रताम्,
विधिरहो बलवानिति मे मतिः।।90।।

90. चन्द्रमा और सूर्य को राहू से ग्रसित तथा हाथी और सर्प को बंधन में बुद्धिमानों को निर्धन देखकर हमको विश्वास होता है कि भाग्य ही बलवान् है। वास्तव में राहू द्वारा चन्द्रमा और सूर्य ग्रसित नहीं किये जाते, ये ईश्वरीय नियम है, चन्द्रमा, सूर्य, राहू, केतु आदि नक्षत्र सब ईश्वर के नियमानुसार अन्तरिक्ष में भ्रमण करते हैं।

सृजति तावदशेषगुणाकरं, पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः।
तदपि तत्क्षणभंगिकरोति चेदहह कष्टमपंडितता विधेः।।91।।

91. ब्रह्मा जी कितने मूर्ख हैं जो सब गुणों से सम्पन्न पृथ्वी के भूषण पुरुष को बनाकर उसका शरीर क्षणभंगुर बनाते हैं। यह कथन युक्तिसंगत नहीं है, ब्रह्मा अगर मूर्ख हैं तो फिर ज्ञानी कौन है? ब्रह्मा ने बड़ी बुद्धिमत्ता से सृष्टि की रचना की है। यह सामर्थ्य अन्य किसी में नहीं है।

पत्रं नैव यदा करीरविटपे दोषो वसन्तस्य किम्।
नोलू कोऽप्यवलोकते यदि दिवा सूर्यस्य किं दूषणम्।।
धारा नैव पतन्ति चातकमुखे मेघस्य किं दूषणम्।
यत्पूर्वं विधिना ललाटलिखितं तन्मार्जितुं कः क्षमः।।92।।

92. करीर के पेड़ में पत्ते नहीं आते तो इसमें वसन्त का क्या दोष? उल्लू को दिन में नहीं दीखता तो सूर्य का क्या दोष? चातक के मुँह में जल की धारा नहीं पड़ती तो मेघ का क्या दोष? विधाता ने जो जैसा बनाया है उसे कोई मिटा नहीं सकता है? यह विधाता की ही व्यवस्था है।

नमस्यामो देवान्नतु इतविधेस्तेऽपि वशमा।
विधिर्वन्द्यः सोऽपि प्रतिनियति कर्मेककलदः।।
फलं कर्मायत्तं किममरगणैः किं च विधिना।
नमस्तत्कर्मेभ्यो विधिरपि न येभ्यः प्रभवति।।93।।

93. मैं देवताओं को नमस्कार करता हूँ परन्तु वह ब्रह्मा के वश में है, तथा ब्रह्मा भी पूर्व कर्मानुसार फल देते हैं। अतः ब्रह्मा भी पाप-पुण्य दोनों ही कर्मों के अनुसार फल देता है। अतःएव मैं कर्म ही को सर्वश्रेष्ठ मानता हूँ जिस को बदलने पर ब्रह्मा का भी वश नहीं चलता। ईश्वर के सभी नियम अपरिवर्तनीय हैं।

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियतिमो ब्रह्माण्ड भाण्डोदरे।
विष्णुर्येन दशावतरगहने क्षिप्तो महासंकटे।।
रुद्रो येन कपालपाणिपुटके भिक्षाटनं कान्तिः।
सूर्यो भ्राम्यति नित्यमेव गमने तस्मै नमः कर्मण।।94।।

94. जिस कर्म ने ब्रह्मा को कुम्हार के सदृश ब्रह्माण्ड रचने, विष्णु को सब का संकट हरने वाला, महादेव को भिक्षा मांगने वालों को भिक्षा देने और सूर्य को नित्य चक्कर लगाने को बाधित किया, उस कर्म को प्रणाम है। ब्रह्मा, विष्णु और महादेव ईश्वर के ही नाम हैं। वही सृष्टि रचना, स्थिति और प्रलय करता है।

नैवाकृतिः फलति नैव कुलं न शीलम्।
विद्यापि नैव न च यत्नकृतापि सेवा।।

भाग्यानि पूर्वतपसा खलु संचितानि ।
काले फलन्ति पुरुषस्य यथव वृक्षाः ।।95।।

95. पुरुषों को सुन्दर आकृति, उत्तम कुल, शील, विद्या और यत्न से की हुई सेवा से कुछ लाभ नहीं होता । पूर्वजन्म का संचित किया हुआ तप ही समय पर वृक्ष की भाँति फल देता है । अर्थात् जब तक पूर्व जन्मों के कर्म आगे आ जाते हैं तो वर्तमान में किये कर्मों का फल उनको भुगतने के बाद ही मिलता है, उचित समय आने पर ही उनका लाभ होगा ।

वने रणे शत्रु जलाग्निमध्ये, महार्णवे पर्वतमस्तके वा ।
सुप्तं प्रमत्तं विषमस्थितं च, रक्षन्ति पुण्यानि पुराकृतानि ।।96।।

96. वन, रण, शत्रु, जल, अग्नि, सागर और पर्वतों के शिखरों में, संकट के समय, सोते हुए असावधान और विषमावस्था में केवल पूर्व जन्म के पुण्य ही पुरुषों की रक्षा करते हैं । अर्थात् पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार उत्तम परिवार में जन्म होता है ।

या साधूंश्च खलान्करोति विदुषो मूर्खान्हितां द्वेषिणः ।
प्रत्यक्षं कुरुते परोक्षम्भृतं हालाहलं तत्क्षणात् ।।
तामाराधय सक्रियां भगवतीं भोक्तुं फलं वाञ्छितम् ।
हे साधो व्यसनैगुंर्णेषु विपुलेष्वास्थां फलं मा कृथाः ।।97।।

97. जो सत्क्रिया दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को पण्डित, शत्रुओं को मित्र, गुप्त बातों को प्रकट और विष को अमृत बनाती है, हे साधो ! यदि वांछित फल भोगना चाहते हो तो हठ और कष्ट के अनेक साधनों में समय नष्ट न करके उस सत्क्रिया-रूप ईश्वर की आराधना करो अर्थात् श्रेष्ठ आचरण वाले बनो । श्रेष्ठ आचरण वाला दुष्टों को सज्जन, मूर्खों को पण्डित और मित्र बना सकता है ।

गुणवदगुणवद्वा कुर्वता कार्यमादौ ।
परिणतिस्वधार्या यन्नतः पण्डितेन ।।
अतिरभमकृतानां कर्मणामाविपत्ते-
र्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ।।98।।

98. कार्य करने वालों को पहले उसके परिणाम पर विचार कर लेना चाहिए, बिना विचारे शीघ्रता से किये गये काम का फल जीवन भर हृदय को जलाता तथा कांटे की भाँति चुभता रहता है । कहावत भी है कि बिना विचारे जो करे, सो पीछे पछताय ।

स्थल्यां वैदुर्यमय्यां पचति च लशुनं चन्दनैरिंधनाघैः ।
सौवर्णैलांगलाग्रैर्विलिखति वसुधामर्कमूलस्य हेतीः ।।
छित्वाकर्पूरखण्डानवृत्तिमिह कुरुते को द्रवाणांसमन्तात् ।
प्राप्येमां कर्मभूमि चरति न मनुजो यस्तपोमन्दभाग्यः ।।99।।

99. जो कर्मभूमि में आकर तप नहीं करता, वह पुरुष मानो मर्कतमणि के बर्तन में लहसुन को चन्दन के ईंधन से पकाता है और खेत में आक की जड़ों को नष्ट करने के लिए सोने का हल चलाता है तथा कपूर के खण्ड करके कोदों के खेत की मेड़ बनाता है । अर्थात् जैसा कार्य हो, उसके लिये वही उपयुक्त उपकरण व विचार कर कार्य करना चाहिए ।

भीमं वनं भवति तस्य पुरं प्रधानम्,
सर्वो जनः सुजनतामुपयाति तस्य ।
कृत्स्ना च भूर्भवति सन्निधिरत्नपूर्णा,
यस्यास्ति पूर्वसुकृतं विपुलं नरस्य ।।100।।

100. जिस मनुष्य के पास पूर्व जन्म के बहुत से पुण्य हैं, उसके लिए भयानक वन भी अच्छे नगर के समान हो जाता है । सभी लोग उसके मित्र हो जाते हैं और सम्पूर्ण पृथ्वी भी उसके लिए रत्नपूरित हो जाती है । पुण्य कर्मों का फल सुख देने वाला होता है, इसलिए सुख की इच्छा

करने वालों को पुण्य कर्म ही करने चाहियें ।

मज्जत्वम्भसि यातु मेरुशिखरं शत्रुं जयत्वाहवे ।
वाणिज्यं कृषिसेवनादिसकला विद्याः कलाः शिक्षतु ।।
आकाशं विपुलं प्रयातु खगवत्कृत्वा प्रयत्नं परम् ।
नाभाव्यं भवतीह कर्मवशतो भाव्यस्य नाशः कुतः ।। 101 ।।

101. चाहे सागर में कूदो, चाहे सुमेर के शिखर पर जाओ, चाहे भयंकर युद्ध में शत्रुओं को जीतो, चाहे वनिज कृषि-सेवा आदि नाना प्रकार की कलाओं की शिक्षा में मन दो और चाहे सावधानी से आकाश में उड़ो, परन्तु अनदेखी नहीं होती और जो कर्मवश होनी है, वह मिटती भी नहीं । अर्थात् जो भी होना है, वह होकर ही रहता है, इसे कर्मफल ही मानना चाहिये । यह ईश्वर ही जानता है कि किस कर्म का फल किस समय किस रूप में देना है ।

को लाभो गुणि संगमः किमसुखं प्राज्ञेतरैः संगतिः ।
का हानिः समयच्युतिर्निपुणता का धर्मतत्त्वे रतिः ।।
कः शूरो विजितेन्द्रियः प्रियतमा काऽनुव्रता कि धनम् ।
विद्या किं सुखमप्रवासगमनं राज्यं किमाज्ञाफलम् ।। 102 ।।

102. लाभ क्या है? गुणियों का संग । दुःख क्या है मूर्खों का साथ । हानि क्या है? समय पर चूकना । निपुणता क्या है? धर्म में प्रेम होना । शूर कौन है? जिसने इन्द्रियों को वश में किया है । स्त्री कौन उत्तम है? जो अनुकूल हो । धन क्या है? विद्या । सुख क्या है? परवश न होना । और राज्य क्या है? अपनी इच्छा अनुसार रहना । मूर्खों के साथ से दुःख उत्पन्न होता है, विद्या सबसे बड़ा धन, सुख जो वह पराधीन अथवा पराये के अधीन न हो । पराधीन सपने सुख नाहिं ।

अप्रियवचनदरिद्रैः प्रियवचनाढयैः स्वदारपरितुष्टैः ।
परपरिवाद निवृत्तैः क्वचित्क्वचिन्मंडिता वसुधा ।। 103 ।।

103. अप्रिय वचनों के निर्धन, प्रियभाषी धनी अपनी ही स्त्री से प्रेम करने वाले, और पराई निन्दा से रहित पुरुष सभी स्थान में नहीं होते । उनसे कहीं-कहीं पृथ्वी शोभित होती है । सहनशील व्यक्ति कहीं कहीं बहुत

कम ही मिलते हैं । सहनशीलता सुख का प्रतीक है ।

कदर्थितस्याऽपि हि धैऽर्यवृत्ति-
र्न शक्यते धैर्यगुणः प्रमार्ष्टुम् ।
अधोमृखस्यापि कृतस्य वह्णे-
र्नाधः शिखा याति कदाचिदेव । । 104 । ।

104. धैर्यवान् पुरुष कितना ही दुःखी हो उसके धैर्य को कोई मिटा नहीं सकता । जैसे कोई प्रज्वलित अग्नि को उलट भी दे, तो भी उसकी ज्वाला ऊपर ही जाती है नीचे नहीं । अर्थात् धैर्यवान् पुरुष कितना भी दुःख अथवा विपत्ति आ जाये तो वह अपना धैर्य नहीं छोड़ता ।

एकेनापि हि शूरेण पादाक्रान्तं महीतलम् ।
क्रियते भास्करेणैव परिस्फुरति तेजसा । । 105 । ।

105. जिस प्रकार सूर्य अकेला ही अपनी किरणों से सारे संसार को प्रकाशमान कर देता है, उसी प्रकार एक ही वीर अपनी शूरता और पराक्रम साहस से सारी पृथ्वी को अपने पैरों तले कर लेता है अर्थात् अपना अधिकार जमा लेता है । सूर्य ईश्वर की ज्योति से प्रकाशित है । वीर पुरुष अपने आत्मबल से पृथ्वी पर अपना साम्राज्य कायम कर लेता है ।

कान्ताकटाक्षविशिखा न दहन्ति यस्य,
चित्तं न निर्दहति कोपकृशानुतापः ।
कर्षन्ति भूरिविषयाश्च न लोभपाशै-
र्लोकत्रयं जयति कृत्स्नमिदं स धीरः । ।106 । ।

106. स्त्रियों के नेत्र बाण जिसे नहीं छेदते, क्रोधरूपी अग्नि जिसके चित्त को नहीं जलाता और इन्द्रियों के विषय व लोभ के पास जिसके मनको नहीं खींचते, वह पुरुष दोनों लोकों को जीतते हैं । अर्थात् इस लोक और परलोक में उनकी कीर्ति होती है ।

वह्निस्तस्य जलायते जलनिधिः कुल्यायते तत्क्षणात् ।
मेरुः स्वल्पशिलायते मृगपतिः सद्यः कुरंगायते । ।

व्यालो माल्यगुणायते विषरसः पीयूषवर्षायते ।
यस्यांगोऽखिललोकबल्लभतमं शीलं समुन्मीलति ।। 107 ।।

107. जिस व्यक्ति के मन में विश्वविमोहक शील विराजमान है उसके लिए अग्नि, जल, सागर, छोटी-सी नदी, मेरु पर्वत, पत्थर के खण्ड के समान, सिंह, हरिण, सर्प, फूलों का हार और विष अमृत के समान हो जाता है । जो व्यक्ति अपने मन पर काबू पा लेता है, वह अमृत पान करता है, अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होता है ।

लज्जागुणौघजननीं जननीमिव स्वा-
मत्यन्तशुद्धहृदयामनुवर्तमाताम् ।।
तेजस्विनः सुखमसूनपि सन्त्यजन्ति ।
सत्यव्रतव्यसनिनो न पुनः प्रतिज्ञाम् ।। 108 ।।

108. तेजस्वी और सत्यव्रत के धारण करने वाले पुरुष लज्जादि गुणों को उत्पन्न करने वाली अपनी माता के समान शुद्ध हृदय वाली स्वतंत्र प्रतिज्ञा को नहीं छोड़ते । चाहे इसके लिए उन्हें अपना प्राण ही क्यों न त्यागना पड़े । एक बड़ी मशहूर कहावत श्री राम के विषय में कही जाती है कि रघुकूल रीत सदा चली आई, प्राण जाये पर वचन न जाई । सत्य पर चलने वाले अपने वचन के पक्के होते हैं, चाहे उसकी पालना में अपने प्राण ही क्यों न त्यागने पड़ें ।

दूसरा खण्ड

शृंगारशतक

शम्भू स्वयम्भुहरयो हरिणेक्षणानाम्,
येनाक्रियन्त सततं गृहकर्मदासाः ।
वाचामगोचरचरित्रविचित्रताय,
तस्मै नमो भगवते कुसुमायुधाय ।।1।।

1. जिसने शिव, ब्रह्मा और विष्णु को भी स्त्रियों के गृहकार्य करने के लिए दास बना रखा है और जो चरित्र में चतुर है, उस कामदेव को नमस्कार है। अर्थात् स्त्रियों की सुन्दरता को देख बड़े-बड़े काम वासना के शिकार हो जाते हैं। इसलिये इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए।

स्मितेन भावेन च लज्जया भिया,
पराङ्मुखैरर्द्ध कटाक्षवीक्षणैः ।
वचोभिरीर्ष्या कलहेन लीलया,
समस्तभावैः खलु बन्धनं स्त्रियः ।।2।।

2. मंद-मंद मुस्कुरा कर, लज्जित होकर, मुख फेर कर, कटाक्ष करके, मधुर वचनों से, ईर्ष्या से कलह करके लीला विलाप से स्त्रियाँ पुरुषों को बन्धन में जकड़ देती हैं। अर्थात् स्त्रियाँ पुरुषों को अनेक प्रकार से अपनी ओर आकर्षित करती हैं। पुरुषों को संयम से रहना चाहिये।

भ्रूचातुर्यात् कुंचिताक्ष कटाक्षाः,
सिनग्धा वाचो लज्जिताश्चैव हासाः ।
लीलामदं प्रस्थितं च स्थितं च,
स्त्रीणामेतद् भूषणं चायुधं च ।।3।।

3. स्त्रियों के भौहों की चतुरता, अर्द्धनेत्र से कटाक्ष करना, मधुर भाषण, लजाकर हँसना, ठुमक-ठुमक कर चलना और घूमकर खड़े हो जाना ये

ही सुन्दर हथियार हैं अर्थात् वश में कर लेती हैं । ईश्वर ने स्त्रियों को आकर्षण हेतु सुन्दर अंग नेत्रादि दिये हैं ।

क्वचित्सुभ्रू भङ्गैः क्वचिदपि च लज्जापरिणतेः ।
क्वचिद्भीतित्रस्तेः क्वचिदपि च लीलाविलासितैः ।
नवोढा नामेभिर्वदन कमलैर्नेत्र चलितैः ।
स्फुरन्नीलाब्जानां प्रकरपरिपूर्णा इव दृशः ।।4।।

4. कभी कटाक्ष करते, लज्जा से शोभित होते, कभी डरते-डरते और कभी लीला से विलास करते, ऐसे नीले कमल के समान नवीन स्त्रियों के नेत्र सर्वत्र अपना प्रभाव फैलाते हैं । बहुत सी स्त्रियों में यह अदाकारी पाई जाती है ।

वक्त्रं चन्द्रविकासि पकज परिहासक्षमे लोचने ।
वर्णः स्वर्णा मपाकरिष्णुरलिनीजिष्णुः कचानां चयः ।।
वक्षोजाविभकृम्भसम्भ्रमहरौ गुर्वी नितम्बस्थली ।
वाचां हारि च मार्दवं युवतिषु स्वाभाविकं मंडनम् ।।5।।

5. चन्द्र को फीका करने वाला मुँह, कमल को हँसाने वाले नेत्र, सोने को फीका करने वाली क्रांति, भौरों को जीतने वाले केश, गज-मस्तक की शोभा हरने वाले कूच (स्तन) और उच्च नितम्ब ये ही स्त्रियों के स्वाभाविक आभूषण हैं । यह सुन्दरता हर स्त्री में नहीं होती, ये सब अनुपम विचित्र कारीगरी ईश्वर की है । किसी की सुन्दरता को टेढ़ी नज़र से न देखें ।

स्मितं किञ्चिद्वक्त्रे सरल तरलो दृष्टिविभवः,
परिस्पन्दो वाचामभिनवविलासोक्तिसरसः ।।
गतानामारम्भः किसलयितलीलापरिकरः ।
स्पृशन्त्यास्तारुण्यं किमिह न हि रम्यं मृगदृशः ।।6।।

6. मंद मुस्कान, चंचल दृष्टि, विलास-युक्त मीठी बातें, धीमी चाल और अनमनी रीति आदि हाव भाव युवावस्था आते ही स्त्रियों में स्वभावतः

ही आ जाते हैं। यह सब ईश्वर की व्यवस्थानुसार, समयानुसार परिवर्तन होता रहता है। यह स्वाभाविक है।

द्रष्टव्येषु किमुत्तमं मृगदृशां प्रेमप्रसन्नं मुखं।
घ्रातव्येष्वपि किं तदास्यपवनः श्राव्येषु किं तद्वचः।।
किं स्वाद्येषु तदोष्ठपल्लवरसः स्पृश्येषु किं तत्तनुः।
ध्येयं किं नवयौवन सुहृदयैः सर्वत्र तद्विभ्रमः।।7।।

7. रसिकों के देखने योग्य वस्तु क्या है? मृगनयनी स्त्रियों का प्रसन्न मुख, सूंघने की वस्तु क्या है? उनके मुख की भाप, सुनने योग्य क्या है? स्त्रियों की मधुर वाणी, स्वादिष्ट वस्तु क्या है? स्त्रियों के अधरपल्लव का मधुर रस, स्पर्श योग्य कौन सी वस्तु है? उनका कुच (स्तन) और ध्यान करने योग्य कौन सी चीज है? स्त्रियों का यौवन विलास। परन्तु पुरुषों को विलासता का शिकार होने से बचना चाहिये, संयम इन्द्रियों पर रखना चाहिये।

एताः स्खलद्वलयसंहति मेखलेत्थ,
झंकार नूपुरस्वाहृतराजहंस्यः।
कुर्वन्ति कस्य न मनो विवशं तरुण्यो,
वित्रस्तमृग्धहरिणो सदृशैः कटाक्षैः।।8।।

8. जिन स्त्रियों के कंकण के शब्द ने क्षुद्र घंटियों की ध्वनि और नूपुर के शब्द ने राजहंसनियों की चाल को जीत लिया है, उन भड़की हुई हरिणी के समान नेत्र वाली स्त्रियाँ किसके मन को आकर्षित नहीं करतीं अर्थात् सभी को अपने वश में कर लेती हैं। आभूषण स्त्री का सिंगार होता है, व सुन्दरता को बढ़ाते हैं।

कुंकुमपंककलंकित देहा गौरपयोधरकम्पितहारा।
नूपुर हंसरणत्पदपद्मा कं न वशीकुरुते भुवि रामा।।9।।

9. केसर और चन्दन से सुगन्धित अंगवाली स्त्री जिसके गोरे स्तनों पर हार झूमता है और जिसके नूपुर हंस के समान बोलते हैं,वह इस संसार में

किसको वश में नहीं कर लेती ? यह स्त्रियों का स्वाभाविक गुण है ।

नूनं हि ते कविवरा विपरीतबोधाः,
ये नित्यामाहुरबला इति कामिनीनाम् ।
याभिर्बिलोलतरतारक दृष्टिपातैः,
शक्रादयोऽपि विजितास्त्वबलाः कथं ताः ।। 10 ।।

10. जिन कवियों ने स्त्रियों का नाम अबला रखा है, वे निश्चय ही विपरीत बुद्धि वाले हैं । जिनके केवल चंचल कटाक्षसे ही इन्द्रादिक हार मानते हैं, भला वह अबला कैसे । यह कवि की कल्पना है कि कवि ने सम्भवतः स्त्रियों के कोमल अंगों को देखकर अबला नाम रखा है । स्त्रियां अबला नहीं वीरांगनां भी होती हैं ।

नूनमाज्ञाकरस्तस्याः सुभ्र वो मकरध्वजः ।
यतस्तन्नेत्र संचारसूचितेषु प्रवर्तते ।। 11 ।।

11. निश्चय ही कामदेव स्त्रियों के सेवक हैं । तभी तो वह जिसे आँखों से सैन कर देती हैं,उसे कामदेव वशीभूत कर लेते हैं । कामवासना के वशीभूत बड़े-बड़े संन्यासी भी हो जाते हैं । इन्द्रियों पर नियंत्रण रखना चाहिए ।

केशाः संयश्रिताः श्रुतेरपि परं पारंगते लोचने ।
अन्तर्वक्त्रमपि स्वभावसुचिभि कीर्णं द्विजानां गणैः ।।
मुक्तानां सततधिवासरुचिरं वक्षोजकुम्भद्वय-
मित्थं तन्वि वपुः प्रशान्तमपि ते क्षोभं करोत्येव नः ।। 12 ।।

12. केश संयमी हैं, अर्थात् सुगन्धित तेलों द्वारा सजाये हैं, तुम्हारे श्रुति (कार्य) भी बड़े मनोहर हैं, मुख भी पवित्र है और चमकते हुए दांतों से भरा, तुम्हारे कुच-कलश में मुक्तों का वास है और तुम्हारे हृदय पर मोतियों की माला सुशोभित है । अर्थात् हे सूक्ष्मांगी ! तुम्हारे शरीर पर जब संयमी (बाल), श्रुति (कान), शुचि (मुँह), द्विज-ब्राह्मण (दांत) मुक्ता (कूच) और मोतियों का हार उपस्थित है तो फिर विरक्त पुरुषों पर भी अनुराग क्यों न उत्पन्न हो । स्त्री के ये प्राकृतिक एवं

स्वाभाविक गुण हैं ।

मुग्धे धानुष्मता केयमपूर्वा त्वयि दृश्यते ।
यदा हरसि चेतांसि गुणैरेव न सायकैः । । 13 । ।

13. हे सुन्दरी ! तू चित्त को अपनी चतुरता रूपी प्रत्यंचा से ही वेध देती है, बाण की जरूरत ही नहीं पड़ती । यह तेरा बड़ा विचित्र चरित्र है । इसी विचित्रता के कारण बहुत से परस्त्री की ओर आकर्षित हो जाते हैं और उनका परिवार टूट जाता है ।

सति प्रदीपे सत्यग्नौ सत्सु तारारवीन्दुषु ।
विना मे मृगशवाक्ष्या तमोभूतमिदं जगत् । । 14 । ।

14. मुझे भी मृगनयनी स्त्री के बिना दीपक, अग्नि, तारे सूर्य और चन्द्रमा के रहते हुए भी संसार अन्धेरा जान पड़ता है अर्थात् कोई भी बात नहीं सुहाती । इसको कहते हैं, विलासता में अन्धा हो जाना ।

उद्वृत्तः स्तनभार एष तरले नेत्रे चले भ्रूलते ।
रागान्धेषु तदोष्टपल्लवमिदं कुर्वन्तु नालव्यथाम् । ।
सौभाग्याचर पंक्तिरेव लिखिता पुष्पायुधेन स्वयम् ।
मध्यस्थापि करोति तापमधि रोमावलिः केन सा । । 15 । ।

15. उन्नत स्तन, चंचल नेत्र, टेढ़ी भौंहें तथा नवीन पत्ते की भाँति लाल दोनों अधर अगर रसिकों को पीड़ित करते हैं तो करें किन्तु कामदेव के हाथों से लिखी सौभाग्य अक्षरों की कतार के समान मध्यस्थ रोमावली क्यों अधिक ताप अर्थात् दुःख देती है । कवि द्वारा स्त्री के सौंदर्य का वर्णन किया गया है । कामदेव पर नियंत्रण न कर पाने वाला दुःख पाता है ।

गुरुणा स्तनभारेण मुखचन्द्रेण भास्वता ।
शनैश्चराभ्यां पादाभ्यां रेजे ग्रहमयीव सा । । 16 । ।

16. स्तरभार के कारण बृहस्पति के समान, कान्तिमान होने से सूर्य के तुल्य, मन्दगति होने के कारण शनिश्चर सी और चन्द्रमुखी होने के कारण स्त्रियाँ चन्द्रमा के समान शोभित होने के कारण स्त्रियाँ ग्रहमयी हुआ

करती हैं। कवि द्वारा बृहस्पति व चन्द्रमा की उपमा देते हुए स्त्री के सौन्दर्य का वर्णन किया गया है।

तस्याः स्तनौ यदि घनौ जघनं विहारि।
वक्त्रं च चारु तव चित्तं किमाकूलत्वम्।।
पुण्यं कुरुष्व यदि तेषु तवास्ति वांछा।
पुण्यैर्बिना नहि भवन्ति समीहितार्थाः।।17।।

17. हे चित्त! यदि तेरी इच्छा स्त्रियों के पुष्ट कूचों (स्तनों), विहार करने योग्य जंघाओं और सिन्दूर-युक्त सुन्दर मुख को पाने की है तो पुण्य कर, क्योंकि बिना पुण्य किये मनोरथ सिद्ध नहीं होते। सुन्दर स्त्री पूर्व जन्मों के शुभ कर्मों से ही मिलती है। केवल इच्छा से नहीं।

मात्सर्यमुत्सार्य विचार्यकार्य-
मार्याः समर्थादमिदं वदन्तु।
सेव्याः नितम्बाः किलभूधराणा-
मुत स्मरसमेर विलासिनीनाम्।।18।।

18. हे पंडितो! मत्सरता त्याग कर विचारपूर्वक उत्तर दो कि पहाड़ नितम्ब (खोह या गुफा) या काम से मदमाती विलासनी स्त्रियों के नितम्ब सेवन करने योग्य हैं। अथवा कामदेव से मुस्कराती विलासनियों के कटि दश का सेवन करना चाहिये। विद्वानों को गृहस्थ के पालन सम्बन्धी नियमों का उपदेश करना चाहिये जिससे विलासता न पनपे। विलासता जीवन को नरक बना देती है।

मुखेन चन्द्रकांतेन महानीलैः शिरोरुहैः।
पाणिभ्यां पद्मरागाभ्यां रेजे रत्नमयीव सा।।19।।

19. स्त्रियों का मुख तो चन्द्रकान्त मणि के तुल्य, केश महानील मणि के समान और हाथ पद्मराग मणि के समान होते हैं। अतः स्त्रियाँ रत्नमयी हैं। सुन्दरता ईश्वरीय देन है, सुन्दर रूप, कुरूप कर्मों के अनुसार ईश्वर देता है। बनावटी सुन्दरता स्थाई नहीं होती।

संमोहयन्ति मदयन्ति विडम्बयन्ति,
निर्भर्त्सयन्ति रमयन्ति विषादयन्ति ।
एताः प्रविश्य सदयं हृदयं नराणां,
किं नाम वामनयना न समाचरन्ति ।। 20 ।।

20. स्त्रियाँ मोह लेती हैं, मत्त कर देती हैं, विडम्बना कराती हैं डांट बताती हैं, रमण कराती हैं और विरह का विषाद भी उत्पन्न कराती हैं, अर्थात् ये स्त्रियां व्यक्ति के सदैव हृदय में बैठ कर न मालूम क्या-क्या नहीं करती हैं । मोह के वशीभूत होने पर ऐसा सम्भव है, अन्यथा नहीं ।

संसारेऽस्मिन्नसारे परिणतितरले द्वे गती पण्डितानां,
तत्त्वज्ञानामृताभ्यः प्लुतललितधियां यातु कालः कदाचित् ।
लो चेन्मुग्धाङ्गनानां स्तनजघनभराभोग संभोगिनीनां,
स्थूलोपस्थस्थलीषूस्यगितकरतलस्पर्शलीलोद्यतानाम् ।। 21 ।।

21. इस चंचल संसार में पंडितों के लिए केवल दो ही गतियाँ सुलभ हैं । या तो तत्त्व-ज्ञान-रूपी अमृत रस का पान करें या पुष्ट कूचों वाली तथा भोग से शिथिल हुई सुन्दर स्त्रियों के शरीर पर हाथ रखे जीवन व्यतीत करें । तत्त्वज्ञानी पुरुष अक्सर अमृत रस का ही पान करते हैं ।

विश्रम्य विश्रम्य वनद्रुमाणाम्,
छायासु तन्वी विचचार काचित् ।
स्तनोत्तरीयेण करोद् धृतेन,
निवारयन्ती शशिनो मयूखान ।। 22 ।।

22. कोई स्त्री वन की छाया में विश्राम लेती हुई और अपने अंचल से चन्द्रमा की छटा छिपाती हुई अपने प्रेमी से मिलने जाती है ।

आदर्शने दर्शनमात्रकामा दृष्ट्वा परिष्वंगरसैकलोलाः ।
आलिंतितायाः पुनरायताक्ष्याराशास्महे विग्रहयोरभेदम् ।। 23 ।।

23. जब तक हम स्त्रियों को नहीं देखते तब तक तो देखने की इच्छा रहती है, और जब देखते हैं तो उनके आलिंगन की इच्छा उत्पन्न होती हैं और लिपटने पर यह इच्छा होती है कि प्राणप्यारी मेरे शरीर से अलग न हो । यह स्वाभाविक ही है ।

मालतो शिरसि जृम्भणोन्मुखी, चन्दनं वपुषि कुंकुमान्वित्तम् ।
वक्षसि प्रियतमा मनोहरा, स्वर्ग एष परिशिष्ट आगतः । । 24 । ।

24. गले में मालती की कलियों की बनी हुई सुन्दर माला, शरीर में सुगन्धित केसर युक्त चन्दन लगा हो और सुन्दर कामिनी को छाती से लिपटाये हो तो समझना चाहिये कि स्वर्ग का शेष सुख भी यही है । परन्तु यह सुख तो क्षणिक है, सच्चा सुख तो प्रभु के मिलन से मिलता है । यह सुख तो कामवासना की तृप्ति तक सीमित है ।

प्राङ्मा मेति मनागनागतरसं जाताभिलाषं ततः-
सव्रीडं तदनु श्लथोद्यतामनु प्रध्वस्तधैर्यं पुनः । ।
प्रेमार्द्रं स्पृहणीयनिर्भररहः क्रीडा प्रगल्भं ततो ।
निःशंकामविकर्षणादिवसुखं रम्यं कुलस्त्रीरतम् । । 25 । ।

25. निश्चय करके कुल-स्त्री की ही रति उत्तम है, क्योंकि पहले नहीं करना, फिर इच्छा करना, लज्जा से शरीर ढीला कर देना, अधीर होना, प्रेम रस में भीगना, सराहनीय एकान्त क्रीड़ा का चातुर्य-विस्तार करना, फिर निडर होकर अंग खींचना आदि से वे अधिक सुखदायक होती हैं । यह निडरता केवल पति-पत्नी के मध्य में ही होती है, अन्य के साथ नहीं । वहाँ भय बना रहता है ।

उरसि निपतितानां स्रस्तधम्मिल्लकानां ।
मुकुलितनयनानां किंचिदुन्मीलितानाम् । ।
सुरतिजनितस्वेदस्वार्द्रगण्डस्थलीनां ।
मधुर मधुवधूनां भाग्यवन्तः पिबन्ति । । 26 । ।

26. छाती से लिपटी हुई, मैथुन-श्रम से थकित स्त्रियों के अधरों जिनके सुगन्धित केस बिखरे हुए हों, आधे नेत्र बन्द किये हों तथा कुछ-कुछ

हिल भी रहे हों और सुरति से उत्पन्न स्वेदबिंदु जिनके मुँह पर मोती की तरह चमक रहे हों ऐसे मधुर मधु का पान भाग्यवान् ही करते हैं। भाग्यशालियों को ही सुन्दर शीलता से सुसज्जित स्त्री मिलती है।

आमीलितनयनानां यः सुरतिरसोऽनुसंविदं कुरुते।
मैथुनैर्भिथोऽवधारितमवितथमिदमेव कामनिवर्हणम्।।1।।

27. आलस्य भरी नेत्र वाली स्त्रियों को काम से तृप्त करना यही स्त्री और पुरुष का परस्पर काम पूजन है। स्त्री की काम वासना को तृप्त करना पुरुष को परस्पर सहमति से करना चाहिए।

इदमनुचितभक्रमश्च पुंसां,
यदिहः जरास्वपि मान्मथा विकाराः।
तदपि न च कृतं नितम्बिनीनाम्,
स्तनपतनावधि जीवितं रतं वा।।28।।

28. ब्रह्मा ने यह ठीक नहीं किया कि वृद्धावस्था में भी कामवासना का रहना स्त्रियों के भी ऐसा नहीं कि जब तक स्तन न गिरे भी तक जियें और काम चेष्टा रखें। ईश्वर ने जो नियम बनाये हैं, वे सबके हित में हैं। ईश्वर का कोई नियम विनाश के लिये नहीं है। मनुष्य द्वारा नियमों की पालना न करने पर दुःख उत्पन्न होता है।

एतत्कामफलं लोके यद्द्वयोरेकचित्तता।
अन्यचित्तकृते कामं शवयोरिवसंगमः।।29।।

29. मैथुन के समय स्त्री पुरुषों का चित्त एकत्रित हो जाना ही काम का फल है, अगर उस समय दोनों का चित्त दो स्थानों पर रहा तो संगम में आनन्द नहीं आता। चित्त की एकत्रिता से ही उत्तम सन्तान उत्पन्न होती है, दोनों का प्रसन्नचित होना अति आवश्यक है।

प्रणयमधुराः प्रेमोद्गाढ़ा रसादलसास्तथा।
भणितमधुराः मुग्धप्रायाः प्रकाशितसम्पदाः।।

प्रकृतिसुभगा विश्रसम्भार्हाः स्मरोदयदायिनी ।
रहसि किमपि स्वैरालापा हरन्ति मृगीदृशाम् ।।30।।

30. एकान्त में कामदेव के उत्पन्न करने वाले, मीठे प्रेमरस से भरे सुखदायक स्वरयुक्त सुनने में सुन्दर, आनन्ददायक सुन्दर गाने मन को मोहित कर लेते हैं । प्रेमरस में मनुष्य अंधा हो जाता है, उसी को वह आनन्द समझ बैठता है ।

आवासः क्रियतां गांगे पापवारिणि वारिणि ।
स्तनमध्ये तरुण्या वा मनाहारिणी हारिणी ।।31।।

31. या तो पाप हरने वाली गंगा के तट पर रहना चाहिये या वक्ष स्थल पर झूलने वाले हार वाली स्त्रियों के मध्य में रहना चाहिये । यह कल्पना कवि की उचित नहीं कि गंगा किसी के पाप हरती या धोती है, गंगा की पवित्रता पवित्र जल के लिए जानी जाती है क्योंकि गंगा जल खराब नहीं होता ।

प्रियं पुरुतो युवतीनां तावत्पदमातनोतु हृदि मानः ।
भवति न यावच्चन्दनतरुसुरभिः निर्मलः पवनः ।।32।।

32. अभिमान करने वाली तभी तक मान करती है जब तक मलयागिरि चन्दन की सुगन्धि से भरी हुई वायु नहीं चलती । किसी को भी अपने सौन्दर्य पर अभिमान नहीं करना चाहिए क्योंकि यह सदा नहीं रहता ।

परिमलभृतोवाताः शाखा नवाकुंरकोटयो ।
मधुर विरतोत्कंठा वाचः प्रियाः पिकपक्षिणाम् ।।
विरल सुरत स्वेदोद्‌गारा वधूवदनेन्दवः ।
प्रसरति मधौ रात्र्यां जातो कस्य न गुणोदयः ।।33।।

33. सुगन्धित वायु चलती है, वृक्षों की शाखा में नये पत्ते निकलते हैं, कोकिलादि पक्षियों की वाणी मधुर और प्यारी लगती है और स्त्रियों के मुख चन्द्र रति रम के प्रस्वेद बूंद के कणों में शोभित होता है । ऐसी

वसन्त ऋतु की रात्रि में किस-किस वस्तु में गुण की ज्योति नहीं प्रकाशित होती? अर्थात् होती है। सुहावना मौसम सबको प्यारा लगता है, उसमें पक्षी भी मधुर वाणी से वातावरण को और सुहावना बना देते हैं। सुहावने मौसम में मोर भी नाचने लगता है।

मधुरयं मधुरैरपि कोकिला-
कलकलैर्मलयस्य च वायुभिः,
विरहिणः प्रणिहन्ति शरीरिणो,
विपदि हन्त सुधापि विषायते।।34।।

34. कोकिलों का मधुर शब्द तथा मलयाचल पवन भी चैत्र मास में विरहियों का वध करता है, इससे ज्ञात होता है कि कुसमय में अमृत भी विष तुल्य हो जाता है। समय पर ही हर क्रिया सुखदायक होती है। भूख लगने पर ही खाना अमृत होता है बिना भूख के विष बन जाता है।

आवासः किल किं चदेव दयिताः पार्श्वे विलामालसः।
कर्णे कोकिल काकली कलरवः स्मेरो लतामण्डपः।।
गाष्ठी सत्कविभिः समं कतिपयैः सेव्याः सितांशो कराः।
केषांचित्सुखयन्ति नेत्र हृदये चेत्रे विचित्राः क्षपाः।।35।।

35. विलास से शिथिल प्यारी के साथ रहना, कान से कोकिला की मीठी कूक सुनना और चांदनी का सुख उठाना ऐसी सामग्रियों से पूर्ण चैत्र की रात्रि किसी पुण्यवान् पुरुष ही के हृदय और नेत्र को सुख देती हुई बीतती है। अर्थात् ऐसा सुख पुण्य कर्मों वालों को ही नसीब होता है।

पान्थस्त्र विरहानलाहुतिकथामातन्वती मञ्जरी।
माकन्देषु पिकाङ्कनाभिरधुना सोत्कण्ठमालोक्यते।।
अप्यते नवपाटलाः परिमला प्राग्भार पाटच्चरा।
वांतिक्लांति वितानतानवकृतः श्रीखंडशैलानिलाः।।36।।

36. पथिकों की स्त्रियों की विरहाग्नि को बढ़ाने वाले आम के बौर को

कोयल बड़े प्रेम से देखती है। इस वसन्त ऋतु में नवीन पाटल पुष्प के सुगन्ध को चुराने वाले मलयानिल भी उनके विरह को बढ़ाते हुए चल रहे हैं। बसन्त ऋतु में वृक्षों में सुगन्धित फूल निकलते, सुगन्धि को बढ़ाते रहते हैं।

सहकारकुसुम केसर निकरभरामोदमूर्छितदिगन्ते।
मधुरमधुविधुग्मधुपे मधौ भवेत्कस्य नोत्कण्ठा।।37।।

37. जिस वसन्त ऋतु में आम के बौर की सुगन्धि केसर के समान फैल रही हो और उसके सुरभिपान से भ्रमर मत्त हो रहे हों, उस वसन्त में किसे उत्कण्ठा नहीं होती। अर्थात् सबका हृदय प्रफुल्लित हो उठता है।

अच्छार्द्रं चन्दनरसार्द्रकरा मृगाक्ष्यो।
धारागृहाणि कुसुमानि च कौमुदी च।
मन्दो मरुत्सुमनसः शुचि हर्म्यपृष्ठम्।
ग्रीष्मे मदं च मदनं च विवर्धयन्ति।।38।।

38. चन्दन से चर्चित हाथ वाली मृगनैनी स्त्री, फुवारे वाले भवन सुगन्धित और मन्द पवन, चाँदनी, खिले हुए फूल तथा श्वेत छत ये सब ग्रीष्म ऋतु में काम तथा मद को बढ़ाती है। ऋतुओं के परिवर्तन से मनुष्यों के शरीरों में भी परिवर्तन होता है। कई ऋतुओं में कामवासना बढ़ जाती है।

स्रजोहद्यामोदा व्यजनपवनश्चन्द्रकिरणाः।
परागः कासारो मलयजरजः शीधु विशदम्।
शुचिः सौधोत्संगः प्रतनु वसनं पङ्कजदृशो।
निदाघे तूर्णं तत्सुखमुपलभन्ते सुकृतिनः।।39।।

39. अच्छी सुगन्धित माला, पंखे की वायु, चांदनी, पुष्पों का पराग, तालाब, चन्दन का चूरा, आसव, ऊँचे भवन की छत, महीन वस्त्र और कमलनैनी सुन्दर स्त्री आदि पदार्थों से ग्रीष्म ऋतु में पुण्यवान् पुरुष ही

लाभ उठाते हैं । उक्त सुविधा भाग्यशाली को ही मिल पाती है पुण्य आत्मा ही लाभान्वित होती है ।

सुधाशुभ्रं धाम स्फुरदलमरश्मिः शशधरः ।
प्रिया वक्त्राम्भोजं मलयजरजश्चाति सुरभिः ।।
स्रजो हृद्यामोदास्तदिदमखिलं रागिणि जने ।
करोत्यन्तः क्षोभं न तु विषयसंसर्गविमुखे ।। 40 ।।

40. चूना पोता हुआ भवन, निर्मल चन्द्रमा, प्यारी का मुख कमल सुगन्धित चन्दन, सुगन्धित पुष्पों की माला, ये सब अनुरागी पुरुषों के हृदय में अत्यन्त क्षोभ करते हैं, परन्तु विषय विमुखियों को नहीं । जो इन्द्रियों पर नियंत्रण रखते हैं, वे विषयवासनाओं से दूर रहते हैं ।

तरुणी चैषा दीपित कामा, विकसितजातीपुण्यसुगंधिः ।
उन्नतपीनपयोधरभारा प्रावृट् कुरुते कस्य न हर्षम् ।। 41 ।।

41. स्त्रियों के समान कामदेव को उत्तेजित करने वाली जूही के पुष्प को विकसित करने वाली, उन्नत और पीन पयोधरों से झुकी हुई वर्षा ऋतु किसको प्रसन्न नहीं करती? श्रावण मास में मोर भी खुशी से नाच उठते हैं ।

शिखिलकृलकलकेकारावरभ्या बनान्ताः ।
सुखिनमसुखिनं वा सर्वमुत्कण्ठयंति ।। 42 ।।

42. मेघ से व्याप्त आकाश, धरातल नवीन कुटज और कदम्बों के पुष्पों की सुगन्धित वायु और मयूरों वाले रमणीय वन प्रान्त ये सभी सुखी और दुःखी व्यक्तियों को उत्कंठित करते हैं । सुगन्धित वायु सबको सुख देने वाली होती है ।

उपरि घनं घनपटलं तिर्यग्गिरयोपि नर्तितमयूराः ।
वसुधा कन्दलधवला दृष्ट्वा पथिकः क्व यातु संत्रस्तः ।। 43 ।।

43. ऊपर घनघोर बादल छा रहे हैं, दाहिने बायें पहाड़ों पर मोर नाच रहे हैं, नीचे की भूमि दूब तथा ओस कणों में धवली हो रही है, ऐसे समय में जब कि चारों ओर विरह को उद्दीपन करने वाला दृश्य है तो बेचारा पथिक क्या करे? पथिक को प्रकृति की सुन्दरता को देख कर प्रसन्न होना चाहिये, ईश्वर का धन्यवाद करना चाहिये।

इतो विद्युद्दल्लोविलसितमितः केतकितरोः।
स्फुरद्गन्धः प्रोद्यज्जलद निनदस्फूर्जितमितः।।
इतः केकीक्रीड़ाकलकलरवः पक्ष्मलदृशाम्।
कथं यास्यन्त्येते विरहदिवसाः सम्भृतरसाः।।44।।

44. बिजली की प्रभा, केतकी की सुगन्ध, मेघ का गर्जना और मोरों की क्रीड़ा वाले ऐसे समय में विरहिणी स्त्रियों के दिन कैसे बीतेंगे? यह केवल कवि की कल्पना है।

असूची संसारे तमसि नभसि प्रौढजलद-
ध्वनिप्राप्ते तस्मिन् पतति दृशदां नीरनिचये।।
इदं सौदामिन्याः कनककमनीयं विलसितं।
मुदं च ग्लानिं च प्रथयति पथिष्वेष सुदृशाम्।।45।।

45. जब आषाढ़ सावन के घोर अन्धकार में मेघ गरजते है। तब विरहिणी स्त्रियों को उनके पथिक प्राणपति के प्रति दुःख उत्पन्न होता है। अर्थात् जैसे मेघ के गरजने पर वर्षा के न होने का प्रभाव होता है, वैसा ही पति के प्रति स्त्री का विचार होता है।

आसारेण न हर्म्यतः पियतमैर्यातु बहिः शक्यते।
शीतोत्कम्पनिमित्तमायतदृशा गाढं समालिंगयते।।
जातः शीतल शीकाराश्च मरुतोवात्यंत खेदच्छिदो।
धन्यानां वत दुर्दिनं सुदिनतां याति प्रियासंगमे।।46।।

46. वर्षा के दिनों में स्त्रियां जाड़े का बहाना कर पति से आलिंगन किये

रहती हैं । ऐसे ही पुरुष लोग भी घर में ही स्त्रियों के पास रहते हैं । ठीक हैं ऐसे समय में पति-पत्नियों के लिए दुर्दिन भी सुदिन हो जाते हैं । अर्थात् प्रेमभाव में दुःखों को भूल जाते हैं ।

अर्द्धनीत्वा निशायाः सरभससुरतायासखिन्नश्लथांगः ।
प्रोद्भूतासह्य तृष्णोमधुमदनिरतोहर्म्यपृष्ठे विविक्ते ।।
सम्भोगक्लान्तकान्ताशिथिलभुजलयावर्जितं कर्करीतो ।
ज्योत्स्नाभिन्नच्छाधरं न पिबति सलिलं शारदं मंदभाग्यः ।। 47 ।।

47. रात्रि में मैथुन-श्रम से जिसके अंग थकित, मद में मस्त, प्यास से छत पर एकान्त में बैठे हैं, उसी समय में स्त्री जल लाकर देती है, शरद ऋतु का ऐसा जल मन्दभागी नहीं पीते ।

हेमन्ते दधिदुग्धसर्पिरशना मंजिष्ठवासो भृतः ।
काश्मीरद्रवसांद्रदिग्ध वपुषाः खिन्नः विचित्रैः रतैः ।।
पीनोरःस्थलकामिनीजनकृताश्लेषा गृहाभ्यन्तरे ।
ताम्बूलीदलपूरापूरितमुखा धन्याः सुखं शेरते ।। 48 ।।

48. दही, दूध और घी, सुगन्ध सिखरन खाये, केशर कस्तूरी सर्वांग लगाये, रतिभेद में निपुण, पुष्ट कूचों तथा सघन जंघे वाली स्त्रियों के साथ पान सुपारी खाकर मजीठ के वस्त्रों को पहिने । भाग्यवान् पुरुष ही हेमन्त ऋतु में सोते हैं । अर्थात् हेमन्त ऋतु का आनन्द लेते हैं ।

चुम्बन्तो गण्डभित्तीरलकवति मुखेसीत्कृतान्यादधाना ।
वक्षःसूत्कंचुकेषु स्तरभरपुलकोद्भेदमापादयन्तः ।।
उरूनां कम्पयन्तः पृथुजघनतटास्त्रसयन्तो शुकानि ।
व्यक्तं कान्ताजनानां विटचरितकृतः शैशिरावांतिवाता ।। 49 ।।

49. शिशिर ऋतु का वायु अलक वाली स्त्री के सुन्दर मुख व कपोलों का चुम्बन लेना मुँह से सी-सी शब्द, रोमांच तथा जंघाओं में कम्पन आदि लम्पट पुरुषों की भाँति आचरण करता है । ऐसा कवि का अपना अनुभव होगा ।

केशानाकुलयन्दृशो मुकुलयन्वासो बलादाक्षिपन्ना ।
तन्वन्पुलकोद्गमं प्रकटयन्नुद्वेगकम्पं गतौ ।।
वारं वारमुदारसीत्कृतकृतो दन्तच्छदान्पीडयन् ।
प्रायः शैशिर एष सम्प्रति मरुतंतासु कांतायते ।।50।।

50. शिशिर ऋतु का पवन बालों को बिखेरता, आँखों को कुछ मूंदता, साड़ी को बलात् उठाता, देह को रोमांचित करता, चलने में उद्वेग, बार-बार सी-सी करने में होठों को पीड़ित करता, स्त्रियों में पति का सा आचरण करता है। कवि द्वारा एक रोमांचक दृश्य का वर्णन किया गया है।

असाराः सन्त्येते विरतिविरसायासविषया ।
जुगुप्सतां यद्वा ननु सकल दोषास्पदमिति ।।
तथाप्यंतस्तत्त्वे प्रणिहितधियामप्यतिबल-
स्तदीयाऽनाख्येयः स्फुरति हृदये कोऽपि महिमा ।।51।।

51. चाहे यह भोग विलास वैराग्य में नीरस ज्ञात हो और लोग चाहे दोषों का ग्रह मान कर निन्दा करें परन्तु फिर भी विषय भोग की बड़ी महिमा है जो कहने में नहीं आ सकती। विषयभोग विलासता के लिये निन्दनीय है, परन्तु सन्तान उत्पन्न करने के लिए किया गया सम्भोग की महिमा हो सकती है।

भवन्तो वेदान्तप्रणिहितधियामाप्तुगुरवो,
विदग्धलापानां वयमपि कवीनामनुचराः ।
तथाप्येतेदृभूमौ न हि परहितात् पुण्यमधिकम् ।
न चास्मिन् संसारे कुवलयदृशो रम्यमपरम् ।।52।।

52. तुम वेदांत के शिक्षक और मैं विचित्र कामशास्त्र विनोदी कवियों का दास हूँ। परन्तु यह मैं सत्य कहता हूँ कि परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं और कमलनैनी स्त्रियों के अतिरिक्त दूसरी वस्तु नहीं है। यह तो सत्य है कि परोपकार से बढ़कर कोई पुण्य नहीं है।

किमिह बहुभिरुक्तैर्युक्तिशून्यैः प्रलापै-
र्द्वयमिह पुरुषाणां सर्वदा सेवनीयम् ।
अभिनवमदलीलालालसं सुन्दरीणां,
स्तनभरपरिखिन्नं यौवनं वा वनं वा ।। 53 ।।

53. यहाँ अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है; पुरुषों को केवल दो ही वस्तु सर्वदा सेवनीय है । नवीन मदान्ध लीलाभिलाषिणी और स्तन-भारखिन्न सुन्दरी का यौवन अथवा वन । अधिकतर लोगों को सुन्दरी का यौवन ही सेवनीय होता है ।

सत्यं जना वच्मि न पक्षपाता-
ल्लोकेषु सर्वेषु च तथ्यमेतत् ।
नान्यन्मनोहारि नितम्बनीभ्यो,
दुःखैकहेतुर्न च कश्चिदन्यः ।। 54 ।।

54. हे सज्जनों ! यह सत्य कहता हूँ इसमें जरा भी पक्षपात नहीं है कि संसार में स्त्रियों से बढ़कर मन को हरने वाली और दुःखदायी अन्य कोई वस्तु नहीं है । सभी स्त्रियां दुःखदायी नहीं होती, स्त्री तो जगत् जननी है ।

तावदेव कृतिनामपि स्फुरत्येष निर्मलविवेकदीपकः ।
यावदेव न कुरंगचक्षुषां ताड्यते चपललोचनांचलैः ।। 55 ।।

55. ज्ञानियों के ज्ञान का दीपक भी तब तक प्रकाशित रहता है जब तक मृगनयनी स्त्रियों की नेत्र रूपी हवा नहीं लगती । अर्थात् जब तक स्त्रियों के प्रेम जाल में न फंसे । प्रेम करना बुरा नहीं, प्रेम जाल में फंसना बुरा है ।

वचसि भवति संगत्यागमुद्दिश्य वार्ता,
श्रुतिमुखरमुखानां केवलं पंडितानाम् ।।
जघनमरुणरत्नग्रंथकांची कलापम् ।
कुवलय नयनानां को विहातुं समर्थः ।। 56 ।।

56. पंडित लोग स्त्रियों के त्याग की जो शिक्षा देते हैं यह केवल कहने ही के

लिए, नहीं तो लाल रत्न से जड़ी हुई करधनी वाली कमल नयनी स्त्रियों को भला कौन छोड़ सकता है। अर्थात् बहुत कम लोग होते हैं जो स्त्रियों का त्याग कर देते हैं परन्तु अपनी स्त्री का नहीं।

स्वपरप्रतारकोऽसौ निन्दति योऽलीकपण्डितो युवतीः।
यस्मात्तपसोऽपि फलं स्वर्गस्तस्यापि फलं तथाप्सरसः।।57।।

57. जो पंडित स्त्रियों की निन्दा करता है वह झूठा है क्योंकि तपस्या करने पर स्वर्ग मिलता है और वहाँ अप्सरा-भोग होता है। यह बात शास्त्र विरुद्ध है, स्वर्ग में कोई अप्सरा नहीं होती, यह भ्रमित करके पाप कर्मों में धकेल देती है।

मत्तेमकुम्भदलेन भुवि सन्ति शूराः,
केचित्प्रचण्डमृगराजवधेऽपि दक्षाः।
किन्तु ब्रवीमि बलिनां पुरतः प्रसह्य,
कन्दर्पदर्पदलने विरला मनुष्याः।।58।।

58. मत गजराज के मस्तक फोड़ने वाले, प्रचण्ड सिंह को मारने वाले वीर संसार में बहुत हैं परन्तु कामदेव के घमण्ड को खण्डित करने वाला कोई बिरला ही व्यक्ति होगा।

सन्मार्गे तावदास्ते प्रभवति ननरस्तावदेवेन्द्रियाणां।
लज्जां तावद्विधत्ते विनयमपि समालम्बते तावदेव।।
भ्रू चापाकृष्टःमुक्ताः श्रवणपथगता नीलपक्ष्माण एते।
याबल्ली लावतीनां न हृदिधृतिमुषोदृष्टिबाणाः पतन्ति।।59।।

59. व्यक्ति उसी समय तक सन्मार्ग में रहता है, इन्द्रियों को बस में रखता है, लज्जा विनय भी उसी समय तक रहती है जब तक कि उसे लीलावती स्त्रियों के नेत्र बाण नहीं लगते। इन्द्रियों पर सब काबू नहीं कर पाते यह उचित है। परन्तु करना चाहिये।

उन्मत्तप्रेमसंरम्भादरभन्ते यदंगनाः।
तत्र प्रत्यूहमाधातुं ब्रह्मापि खलु कातरः।।60।।

60. अति प्रेम में उन्मत्त होकर स्त्रियां जिस काम में जुट जाती हैं उस काम से ब्रह्मा भी उन्हें पृथक् नहीं कर सकता। यह स्वाभाविक होता है, उसको उस समय पृथक् करना सम्भव नहीं।

तावन्महत्त्वं पाण्डित्यं कुलीनत्वं विवेकिता।
यावज्ज्वलति नांगेषु इतः पंचेषु पावकः।।61।।

61. व्यक्ति का यश, पंडिताई, कुलीनता और विवेकता तभी तक रहती है जब तक उसके हृदय में कामोत्पन्न नहीं होता। अर्थात् काम वासना के वेग को बहुत कम लोग रोक पाते हैं। या वह व्यक्ति इससे बचे रहते हैं, जो कामवासना का विचार ही मन में नहीं लाते।

शास्त्रज्ञोऽपि प्रथितविनयोऽप्यात्मबोधोऽपि बाढम्।
संसारेऽस्मिन् भवति विरलो भाजनं सद्गतीनाम्।।
ये नैस्तस्मिन्निरयनगरद्वारमुद्घाटयन्ती।
बामाक्षीणां भवति कुटिला भ्रूलता कुंचिकेव।।62।।

62. शास्त्रज्ञ विनयी होने पर भी सद्गति का पात्र कोई बिरला ही होता है क्योंकि स्त्रियाँ अपनी भौंह रूपी कुंजी से नरक नगर के द्वार का ताला खोल देती हैं। अर्थात् स्त्री के आकर्षण से बहुत कम बच पाते हैं।

कृशः काणः खञ्जः श्रवणरहितः पुच्छविकली,
व्रणो पूयक्लिन्नः कृतिकुलशतैरावृततनुः।
क्षुधाक्षामो जीर्णः पिठरककपालापिंतगलः,
शुनीमन्वेति श्वा हतमपि निहन्त्येव मदनः।।63।।

63. दुबला, काना, लंगड़ा, कनकटा, पूछरहित, घायल, पीबलगा, हज़ारों कोड़ों से व्याप्त शरीर वाला, भूख का मारा, बुड्ढा, मिट्टी के घड़े का मुँह जिसके मुँह में फंसा है, ऐसा भी कुत्ता कुत्तिया के पीछे दौड़ता है। कामदेव मरे को भी मारता है। अर्थात् कामदेव की उत्तेजना कुत्तों में अधिक होती है।

स्त्रीमुद्रां ! कुसमायुधस्ये जथनीं सर्वार्थ-सम्पत्करीम् ।
ये मृढाः प्रविहाय यांति कुधियो मिथ्याफलान्वेषिणः । ।
ते तेनैव निहत्य निर्दयतरं नग्नीकृता मुंडिताः,
केचित्पंचशिखीकृताश्च जटिलाः कापालिकाश्चापरे । । 64 । ।

64. स्त्रियाँ कामदेव की मुद्रा और सर्व सम्पत्तियों को देने वाली हैं । इनसे छुटकारा पाकर निकल भागने वाले को विरक्त नहीं समझना चाहिए, बल्कि यह समझना चाहिये कि कामदेव ने दण्ड देकर उन्हें नंगा किया, सिर मुंडवाया, बाल बढ़वाये और हाथ में ठीकरा देकर उससे भीख मंगवाई है । कामवासना में साधु संत भी लिप्त पाये जाते हैं ।

संसार तब निस्तारपदवी न दवीयसी ।
अन्तरा दुस्तरा न स्युर्पदि ते मदिरेक्षणाः । । 65 । ।

65. तुमको इस संसार से पार होना कुछ कठिन नहीं है । जो अच्छे नेत्र वाली कठिन स्त्रियाँ बीच में न बाधक हों । अर्थात् त्यागी, संन्यासी को स्त्री के साथ एकान्त में नहीं बैठना चाहिए ।

विश्वामित्र पराशर-प्रभृतयो वाताम्बुपर्णाशना-
स्तेऽपि स्त्रीमुखपंकजं सुललितं दृष्ट्वैव मोदं गताः । ।
शाल्यन्नं सघृतं पयोदधियुतं भुञ्जन्ति ये मानवाः ।
तेषामिन्द्रियनिग्रहो यदि भवेद्विन्ध्यस्तरेत्सागरम् । । 66 । ।

66. विश्वामित्र, पराशर आदि महर्षि जो पत्ते, जल और वायु खाकर रहते थे, वे भी स्त्रियों के कमल मुख की ओर देख कर मोह को प्राप्त हुए, फिर अन्न, घी, दूध और दही आदि व्यंजनों को खाने वाले व्यक्ति यदि इन्द्रियों के वश में हो जायें तो विन्ध्याचल के सागर में तैरने के समान इसमें आश्चर्य ही है । तात्पर्य यह है कि काम वासना पर बहुत से ऋषि महात्मा भी नियंत्रण नहीं कर पाते हैं ।

संसारेऽस्मिन्नसारे कुनृपतिभुवनद्वारसेवावलम्ब ।
व्यासंगव्यस्तधैर्यं कथममलधियो मानसं सम्विदध्युः

यद्येताः प्रोद्यदिन्दुद्य तिनिचयभृतोनस्युरम्भोजनेत्राः
प्रेङ्खत्कांचोकलापास्तनभरविनमन्मध्यभागास्तरुण्यः । । 67 । ।

67. उदित चन्द्रमा के समान कान्ति, कमल समान नेत्र, झूलती हुई करघनी, स्तन-भार से झुकी हुई कटि वाली स्त्री यदि न होती तो फिर पुरुष इस असार संसार में निर्मल बुद्धि के रहते हुए भी राजाओं के यहाँ अपमानित नौकरी क्यों करते? जीवनयापन हेतु अर्थ की आवश्यकता के कारण नौकरी भी करनी पड़ती है ।

सिद्धाध्यासितकंदरे हरवृषस्कंधावगाढद्रु मे ।
गंगाधौत शिलातले हिमवतः स्थाने स्थिते श्रेयसि । ।
कः कुर्वीत शिरः प्रणाममलिनं म्लानं मनस्वी जनो ।
यद्वित्रस्त कुरंग शाव नयना न स्युः स्मरास्त्रं स्त्रियः । । 68 । ।

68. यदि घर में मृगनयनी कामिनी न होती तो भला कौन उस हिमालय को छोड़ नगर के स्त्री पुरुषों को प्रणाम कर अपने मन को भंग करता? जहाँ कि कन्दरा में बैठ कर सिद्ध लोग तपस्या करते और जहाँ के वनवृक्षों में नन्दी अपना कन्धा रगड़ता है तथा गंगाजल से पत्थर धोये जाते हैं ।

राजन् तृष्णाम्बुराशेर्नहि जगति गतः कश्चिदेवावसानं ।
को वार्थोऽर्थैः प्रभूतैः स्ववपुषि गलिते यौवनेसानुरागे । ।
गच्छामः सद्म तावद्विकसितनयनेन्दावरालोकनीनाम् ।
यावञ्चक्रस्य रूपं झटिति न जरया लुप्यते प्रयमीनाम् । । 69 । ।

69. हे राजन्! तृष्णा रूपी सागर से कोई पार तो होता ही नहीं, फिर जब हम वृद्ध हैं तो हमें द्रव्य की आवश्यकता ही क्या है? इसलिए उचित तो यह है कि हम अपने घर चले जायें, कि जिससे विकसित कमल के समान हमारी स्त्रियों का रूप वृद्धावस्था न बिगाड़ डाले । तृष्णा रूपी सागर में न डूबें, द्रव्यों की आवश्यकता तो आजीवन पड़ती है ।

रागस्यागारमेकं नरकशतमहादुःखं संप्राप्तिहेतु-
र्मोहस्योत्पत्ति बीजं जलधरपटलं ज्ञानताराधिपस्य ।

कन्दर्पस्यैकमित्रं प्रकटितविविधस्पृष्टदोषप्रबन्धम् ।
लोकेऽस्मिन्नह्यनर्थं निजकुलदहनं यौवनादन्यदस्ति । । 70 । ।

70. अनुराग का घर, सैकड़ों नरकों का द्वार, मोह का बीज, ज्ञान रूपी चन्द्र को छिपाने के लिए मेघ, कामदेव का मित्र, दोषों को प्रकट करने वाला वैराग्य और नीति को पछाड़ने वाला यदि संसार में कोई है, तो युवावस्था ही है । युवावस्था में जो विद्या अध्ययन में व्यस्त रहते हैं, वे कामवासना से बचे रहते हैं ।

शृंगारद्र मनीरदे प्रचुरतः क्रीडारसस्रोतसि ।
प्रद्युम्नप्रियबान्धवे चतुरता मुक्ताफलोदन्वति । ।
तन्वी नेत्रचकोरपारणविचौ सौभाग्यलक्ष्मीनिधौ ।
धन्यः कोऽपि न विक्रियसं कलयति प्राप्ते नवे यौवने । । 71 । ।

71. जो शृंगार विटपों को खींचने वाले, क्रीड़ा रस के निधि कामदेव के प्यारे भाई, चातुर्य रूपी मोतियों के सागर स्त्रियों के नेत्र चकोर के पूर्ण चन्द्र और सौभाग्य लक्ष्मी के एक मात्र ऐसे यौवन को प्राप्त हो तो वही धन्य है । अर्थात् जिसको सुन्दर सुशील स्त्री मिल जाये, वह भाग्यशाली होता है ।

कान्तेत्युत्पललोचनेति विपुलश्रौणीभरेन्युत्सुकः ।
पीनोत्तुंगपयोधरेति सुमुखामम्भोजेति सुभ्रूरिति । ।
दृष्ट्वा माद्यति मोदतऽभिरमते प्रस्तौति जानन्नपि ।
प्रत्यक्षां शुचि पुत्तिकां स्त्रियमहो स्मरस्य दुष्चेष्टितम् । । 72 । ।

72. जो प्रत्यक्ष में अपवित्र, ऐसी स्त्रियों को भी पण्डित लोग मोह के वश में हो कान्ते, कमल नयनी, उच्चनितम्बा, पुष्ट और उत्तुंग स्तनवाली, कमल मुखी और सुन्दर भौंह वाली कह कर प्रशंसा कर मोहित होते हैं, आनन्द पाते हैं, स्मरण करते हैं, और उत्कंठित होते हैं । अर्थात् कामुक व्यक्ति ही अधिक प्रशंसक पाये जाते हैं अथवा जो उनसे कामवासना की पूर्ति चाहते हैं ।

स्मृता भवति तापाय दृष्टा चोन्मादवर्धिनी ।
स्पृष्टा भवति मोहाय सा नाम दयिता कथम् ।। 73 ।।

73. जो स्मरण से संताप, देखने पर मत्त और स्पर्श से मोहित कर लेती हैं, ऐसी स्त्रियों को लोग प्रिय क्यों कहते हैं? यह व्यक्ति की कमजोरी होती है कि कामवासना पर नियंत्रण नहीं रख पाते ।

तावदेवामृतमयी याललेचनगोचरा ।
चक्षुः पथाद् गता विषादप्यतिरिच्यते ।। 74 ।।

74. जब तक स्त्रियाँ समीप हों तभी तक वह अमृतमयी हैं । दूर होते ही वह विषवत् होकर विरह-संताप देती है । अर्थात् दूर रहने से याद सताती है । जो सन्ताप का कारण बनता है ।

नामृतं ना विषं किंचिदेकां मुक्त्वा नितम्बिनीम् ।
सैवामृतलता रक्ता विरक्ता विषवल्लरी ।। 75 ।।

75. स्त्रियों से बढ़ कर अमृत तथा विष कुछ नहीं है । क्योंकि स्नेह करें तो अमृतलता और प्रीति को तोड़ दें तो विषतुल्य हैं । अर्थात् प्रीति तोड़ने पर घृणा होने लगती है और स्नेह बढ़ने पर अमृत समान लगने लगती है ।

लोलावतीनां सहजा विलासा
स्त एव मूढस्य हृदि स्फुरन्ति ।
रागो नलिन्या हि निसर्गसिद्ध-
स्तत्र भ्रमत्येव मुधा षड्ङ्घि ।। 76 ।।

76. लीलावती स्त्रियों के विलास पर मूढ़ लोग वशीभूत हो जाते हैं । जैसे कमलिनी तो जन्म से ललाई लिए रहते हें परन्तु भ्रमर यह समझ कर मुग्ध हो जाते हें कि यह मेरे ही लिए ललाई चमक रही है । जैसे भंवरा सुगन्ध में मुग्ध होकर फूल की पंखुड़ियों में बंद हो जाता है ।

जलपन्ति सार्द्धमन्येन पश्यन्त्यन्यं सविभ्रमाः ।
ह्रदये चिन्तयन्त्यन्यं प्रियः को नाम योषिताम् ।। 77 ।।

77. बात तो दूसरे से करती हैं विलासयुक्त किसी दूसरे को ही देखती हैं और हृदय में किसी दूसरे से ही मिलने की इच्छा रखती हैं । ऐसी दशा में यह मालूम नहीं होता है कि इनमें से स्त्रियों को सबसे अधिक प्यारा कौन है ? इस प्रकार की चंचल स्त्री को समझ पाना बड़ा कठिन होता है । इसको ही त्रिया चरित्र कहते हैं ।

आवर्तः संशयानामविनयभवनं पत्तनं साहसानाम् ।
दोषाणां सन्निधानं कपटशतमयं क्षेत्रमप्रत्ययानाम् । ।
स्वर्गद्वारस्य विघ्नो नरकपुरमुखं सर्वमायाकरंडम् ।
स्त्रीयन्त्रंकेन सृष्टं विषामृतमयं प्राणिनां मोहपाशः । । 78 । ।

78. संशयों और अविनय का घर, साह का नगर; दोषों का पात्र, सैकड़ों कपट का खेत, स्वर्ग द्वार का विघ्न, नरक का द्वार, मायाओं का पिटारा और व्यक्तियों को फंसाने वाली चक्ररूपी स्त्रियों को न मालूम किसने बनाया है । सबका विधाता, निर्माता तो एक परमपिता ही है, ये सब पूर्व जन्मों के संस्कार होते हैं ।

सत्यत्वे न शशांक एष वदनीभूतो न चेन्द्रीवरः ।
द्वन्द्वं लोचनतां गतं न कनकैरप्यंगयष्टिः कृता । ।
किंत्वेवं कविभिः प्रतारितमनास्तत्वंविजानन्नपि ।
त्वङ्मांसास्थिमयं वपुर्मृगदृशां मन्दो जनः सेवते । । 79 । ।

79. क्या चन्द्रमा मुख तो नहीं बन गया, कमल नेत्र थोड़े ही हो जाते हैं, स्वर्ण से बदन थोड़े ही बना है, अरे यह तो स्त्रियों का शरीर चाम, मांस और हाड़ से बना है । यह जानते हुए भी कवियों के बहकाने से मूर्ख लोग उसका सेवन करते हैं । कवि स्त्री की उपमा न जाने किस-किस से कर बैठता है, उसे जमीन से उठा कर स्वर्ग की परी की उपमा दे देता है । मानव उसको पाने को लालाचित हो उठता है ।

यदेतत्पूर्णेन्दुद्यु तिहरमुदाराकृतिवरम् ।
मुखाम्बुजंतन्वंग्या किल वसति तलाधरमधु । ।

इदं तावत्पाकद्रु मफलमिवातीव विरसम् ।
व्यतीतेऽस्मिन्काले विषमिव भविष्यत्यसुखदम् ।।80।।

80. पूर्ण चन्द्र की छवि को हराने वाली सुन्दर स्त्री के मुख कमल का पान युवावस्था में ही अच्छा लगता है। वृद्धावस्था में तो मदार फल के समान कड़वा मालूम होता है। अर्थात् वृद्धावस्था में इन्द्रियां शिथिल पड़ जाती हैं, वह इस योग्य नहीं रहता।

मधु तिष्ठति वाचि योषितां हृदि हालाहलमेव केवलम् ।
अतएव निपीयतेऽधरो हृदयं मुष्टिभिरेव ताड्यते ।।81।।

81. स्त्रियों के अधरों में अमृत और कूचों (स्तनों) में विष है। तभी तो लोग अधर पान करते और कूचों का मर्दन करते हैं। स्तन बच्चों को दूध पिलाने के लिये हैं। इसलिये व्यक्ति के लिये स्तन को विष कवि द्वारा उचित ही कहा गया है।

उन्मीलत्त्रिवलीतरङ्गनिलया प्रोत्तुङ्गपीनस्तन-
द्वंद्वेनोद्यत चक्रवाकमिथुना वक्त्राम्बुजोद्भासिनी ।।
कान्ताकारधरा नदीयमभितः क्रूराशया नेष्यते ।
संसारार्णवमज्जनं यदि ततो दूरेण सन्तयज्यताम् ।।82।।

82. पेट की त्रिवली तरंग है, दोनों उतुंग और पुष्ट स्तन चक्रवाक हैं, मुख कमल हैं, जिसका गम्भीराशय है, ऐसी नदी रूपी स्त्री को धारण करने वाले पुरुषों ! यदि तुम संसार सागर में नहीं डूबना चाहते, तो शीघ्र ही इसका परित्याग करो। अर्थात् जो गृहस्थ धारण नहीं करना चाहता, वह इस संसार सागर में डुबकी नहीं लगाता।

अपसर सखे दूरादस्मात्कटाक्षविषानलात् ।
प्रकृतिविषमाद्याषित्सर्पाद्विलासफणा भृतः ।।
इताफणिना दष्टाः शक्याश्चिकित्सतुमौषधै-
श्चतुरवनिताभोगिग्रस्तं त्यजन्ति हि मन्त्रिणः ।।83।।

83. हे मित्र ! क्रूर और विलासरूपी विषग्नि वाली स्त्रियों से सदा दूर रहो क्योंकि अन्य सांपों का डसा हुआ व्यक्ति औषधियों से भी अच्छा हो सकता है परन्तु चतुर स्त्री-रूपी सर्प के डसे हुए व्यक्ति को मंत्र तंत्र वाले भी छोड़कर भाग जाते हैं। बहुत सी स्त्रियों में विलासता की अग्नि प्रज्जवलित रहती है, उनसे बच कर रहना ही हित में है।

विस्तारितंमकरकेतनधीवरेण,
स्त्रीसंज्ञितं वडिशमत्र भवाम्बुराशौ ।
येनाचिरात्तदधरामिषलालमर्न्य-
मत्स्यान् विकृष्य पचतीत्यनुरागबह्णौ ।।84।।

84. संसार रूपी सागर में कामदेव रूपी केवट ने व्यक्ति को फंसाने के लिए स्त्री रूपी वंश को बनाया है। स्त्री के बिना वंश चल नहीं सकता, ईश्वर ने संसार की रचना बड़े सुनिश्चित ढंग से की है।

कामिनी कायकान्तारे कुचपर्वतदुर्गमे ।
मा संचर मनः पान्थ तत्रास्ते स्मर तस्करः ।।85।।

85. स्त्रियों का शरीर-रूपी वन कुच-रूपी पर्वतों से अति दुर्गम हो गया है। इसलिये हे पथिक ! तू वहाँ न जा क्योंकि वहाँ कामदेव-रूपी चोर रहता है। पति-पत्नी का कर्त्तव्य सन्तान उत्पत्ति के लिये सम्भोग करने का है, न कि कामवासना को शान्त करने का।

व्यादीर्घेण चलेन वक्रगनिता तेजस्विना भोगिना ।
नीलाब्जद्युतिनाऽहिना वरमहं दष्टो न तच्चक्षुषा ।।
दष्टे सन्ति चिकित्सका दिशि दिशि प्रायेण धर्मार्थिनो ।
मुग्धाक्षीक्षणवीक्षितस्य न हि मे वैद्यो न चौप्यौषधम् ।।86।।

86. लम्बा, नील कमल सा काला, चंचल, टेढ़ी चाल वाला, तेजवान, फनधारी साँप अगर काट ले तो अच्छा, परन्तु स्त्री कटाक्ष का काटा जाना ठीक नहीं है क्योंकि साँप के विष से बचाने वाले सभी देशों में है

और धार्मिक भी होते हैं । परन्तु स्त्री के कटाक्ष की दृष्टि से काटे हुए की कोई दवा नहीं है । इसलिये पुरुष को सतर्कता वर्तनी चाहिये ।

इह हि मधुरगीतं नृत्यमेतद्रसोऽयम् ।
स्फुरति परिमलोऽसौ स्पर्श एष स्तनानाम् ।
इति हतपरमार्थैरिन्द्रियैर्भ्राम्यमाणो ।
ह्यहितकरणदक्षैः पंचभिर्वञ्चितोऽस्मि ।। 87 ।।

87. मधुर गान, अच्छा रूप, स्वादिष्ट अधरामृत चख कर, शरीर की सुगन्धि से और स्तनों के स्पर्श से अर्थात् इन पाँचों ज्ञानेन्द्रियों द्वारा व्यक्ति इन पाँचों वस्तुओं पर मुग्ध हो धूर्तों की तरह अपना कार्य साधन करते हैं । कामवासना की अग्नि की लपटों से संयमी ही बच सकता है ।

न गम्यो मंत्राणां न च भवति भैषज्यविषयो ।
न चापि प्रध्वंसं व्रजति विविधैः शांतिकशतैः ।।
भ्रमावेशादंगे किमपि विदधद्भङ्गमसकृत् ।
स्मरोऽपस्मारोऽयं भ्रमयति दृशं घूर्णयति च ।। 88 ।।

88. यह कामदेव रूपी अपस्मार रोग, भ्रम के आवेश में शरीर को तोड़ता, मन को भटकाता और नेत्रों को घुमाता है । इस राग में मंत्र, शान्तिपाठ तथा औषध भी कोई काम नहीं करता । इसमें केवल संयम और इन्द्रिय निग्रह ही काम आता है ।

वेश्यासौ मदनज्वाला रूपेन्धनसमेधिता ।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि घनानि च ।। 89 ।।

89. कामी पुरुष अपने धन और यौवन को वेश्या की कामाग्नि की रूप रूपी प्रचण्डा ज्वाला में भस्म कर देते हैं । ऐसे बहुत लोग होते हैं, राजे महाराजे भी वेश्यावृत्ति में संलिप्त पाये जाते हैं ।

जात्यन्धाय च दुर्मुखाय च जराजीर्णाखिलाङ्गाय च ।
ग्रामीणायच दुष्कुलाय च गलत्कुष्ठाभिभूताय च ।।

यच्छन्ताषु मनोहरं निजवपुर्लक्ष्मीलवश्रद्धया ।
पण्यस्त्रीषु विवेककल्पलतिकाशस्त्रीषु रज्येत कः ।।90।।

90. जन्मान्ध, कुरूप, वृद्ध, गंवार, नीच, कोढ़ी को भी थोड़े द्रव्य की आशा से अपना सुन्दर शरीर तथा यौवन समर्पण कर देने वाली स्त्रियाँ विवेक रूपी कल्पलता को काटने के लिए छुरे के सदृश हैं । भला उनसे कौन बुद्धिमान् रमण कर सकता है । स्त्री काम वासना के वशीभूत हो कुछ भी कर सकती है ।

कश्चुम्बति कुलपुरुषो वेश्याधरपल्लवं मनोज्ञमपि ।
चारभटचोरचेटकविटनटनिष्ठीवनशरावम् ।।91।।

91. वेश्या का अधर यदि सुन्दर है तो भी कौन, कुलीन पुरुष उसे चुम्बन करेगा? क्योंकि वह तो ठग, योद्धा, धूर्त, चोर, नीच, नट और जारों का थूकने का पात्र है । उसका चेहरा चुम्बन न करके कामवासना की पूर्ति तो करते ही हैं ।

धन्यास्त एव तरलायतलोचनानाम्,
तारुण्यरूपघनपीनपयोधराणाम् ।
क्षामोदरोपरिलसत्त्रिक्लीलतानाम् ।
दृष्ट्वाकृतिंविकृतिमेति मनो न येषाम् ।।92।।

92. चंचल नेत्र वाली, यौवन के अभिमान में मत्त, पुष्ट और दृढ़ स्तनवाली त्रिवली स्त्रियों की आकृति देख जिनके मन में विकार उत्पन्न नहीं होता, वे ही पुरुष धन्य हैं । संयमी पुरुष के मन में स्त्रियों को देख विकार उत्पन्न नहीं होता ।

बाले लीलामुकुलितमयी सुन्दरा दृष्टिपाताः ।
किं क्षिप्यन्ते विरम विरम व्यर्थं एष श्रमस्ते ।।
सम्प्रत्यन्ये वयमुपरतं बाल्यमासथा वनान्ते ।
क्षीणो मोहस्तृणमिव जगज्जालमालोकयामः ।।93।।

93. हे बाले ! लीला से सुन्दर कटाक्ष हम पर क्यों फेरती है ? तुम्हारा यह प्रयत्न व्यर्थ है, क्योंकि अब लड़कपन गया, वन में रहते हैं, तृष्णा भी छूटी, अब हम संसार को तृणवत् समझते हैं । त्यागी, तपस्वी जो संसार को तृण्वत् समझते हैं अर्थात् किसी वस्तु से मोह, लगाव नही रहते, वह बच पाते हैं ।

शुभ्रं सद्म सविभ्रमा युवतयः श्वेतातपत्रोज्ज्वला ।
लक्ष्मारित्यनुभूयते स्थिरमिव स्फीते शुभे कर्मणि ।।
विच्छिन्ने नितरामनंगकलहक्रीड़ात्रुटत्तन्तुकम् ।
मुक्ताजालमिव प्रयाति झटिति भ्रश्याद्दिशो दृश्यताम् ।।94।।

94. उज्ज्वल घर, हाव भाव युक्त स्त्री, श्वेत, छलयुक्त लक्ष्मी का भोग, पुण्य की वृद्धि पर निर्भर है और जब पुण्य क्षीण हो जाता है तब मैथुन में कामदेव के युद्ध में टूटी हुई मोतियों की माला के समान सभी लोग लुप्त हो जाते हैं । अर्थात् वृद्धावस्था में उसे कोई नहीं पूछता क्योंकि इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, कामवासना शांत हो जाती है ।

सदा योगाभ्यासव्यसन-कृशयोरात्मनसो- ।
रविच्छिन्ना मैत्री स्फुरति यमिनस्तस्य किम् तैः ।
प्रियाणामालातैरधरमधुभिर्वक्त्रविधुभिः ।
सनिश्वासमोदैः सकुचकलशाऽश्लेषसुरतैः ।।95।।

95. जो योगाभ्यासी होते हैं और उनकी पुण्यात्माओं से मैत्री है, उन्हें स्त्रियों के आभूषण, मुख कमल और कुच कलश छाती लगाने में क्या आनन्द मिलेगा । उनका आनन्द तो प्रभु में ध्यान मग्न होने में है ।

किं कन्दर्पकरं कदर्थयसि किं कोदण्डटंकारितं-
रे रे कोकिल कोमलं कलरवं किं त्वं वृथा जल्पसे ।।
मुग्धे स्निग्धविदग्धमुग्ध मधुरैर्लोलैःकटाक्षैरलं ।
चेतुश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृतं वर्तते ।।96।।

96. अरे कामदेव ! तू अपने धनुष के टंकार से हमें दुःखी मत कर । रे कोकिल ! तू व्यर्थ इतने मीठे स्वरों में न बोल और हे सुन्दरी ! तू अपना कटाक्ष मुझ पर न डाल, क्योंकि मैं अब ईश्वर के चरणों के ध्यान में मग्न हो गया हूँ । समाधिस्थ योगी को संसार से लगाव नहीं रहता ।

यदासीदज्ञानं स्मरतिमिरसंचारजनितम् ।
तदासर्व नारीमयमिदमशेषं जगद्भूत् । ।
इदानीमस्माकं पटुतरविवेकांजनदृशाम् ।
सभीभूता दृष्टिस्त्रिभुवनमपि ब्रह्म मनुते । । 97 । ।

97. जब तक मुझमें कामदेव-रूपी तिमिर-रोग से उत्पन्न अज्ञान था, तब तक सारा संसार स्त्रीमय दिखता था । परन्तु जब हमने विवेकरूपी अंजन अपनी आँखों में लगाया तो मेरी दृष्टि सम हो गई और सारा संसार ब्रह्ममय दीखने लगा है । चारों तरफ सारे ब्रह्माण्ड में ब्रह्म ही ब्रह्म दिखाई देता है, उसके अतिरिक्त कुछ भी नहीं ।

इयं बाला मां प्रत्यनवरतमिदीवरदल-
प्रभाचोरं चक्षः क्षिपति किमभिप्रेतमनया ।
गतो मोहोऽस्माकं स्मरशवरबाणव्यतिकर-
ज्वलज्ज्वालाः शांतास्वदमि न वराकी विरमति । । 98 । ।

98. हे बाले ! तू हम चक्षु वाणी को क्यों फेंकती है । इससे कुछ अर्थ सिद्ध न होगा । क्योंकि मेरा मोह गया, कामाग्नि शांत हो गई, ऐसी दशा में ऐ मूर्खा ! अब भी तू क्यों नहीं विश्राम करती ? बाल अवस्था की चंचलता को रोकना चाहिये ।

यद्यस्य नास्ति रुचिरं तस्मिंस्तस्था स्पृहा मनोज्ञेऽपि ।
रमणीयेऽपि सुधांशौ न मनः कामाः सरोजिन्यः । । 99 । ।

99. जिसकी जिस वस्तु में रुचि नहीं उसकी सुन्दरता से कोई लाभ ही नहीं होता । जैसे रमणीय चन्द्रमा को देखकर भी कमलिनी नहीं खिलती ।

अर्थात् रुचि में कुरुप भी सुन्दर दिखता है ।

यां चिन्तयामि सततं मयिसा विरक्ता,
साप्यन्यमिच्छति जनं स नजोऽन्यसक्तः ।
अस्मत्कृते च परितुष्यति काचिदन्या,
धिक्तां च तं च मदनं च इमां च मां च । । 100 । ।

100. जिसका मैं निरन्तर ध्यान करता हूँ वह मुझसे विरक्त होकर अन्य की इच्छा करती है और वह किसी अन्य स्त्री पर आसक्त है और वह स्त्री हमसे प्रसन्न है इसलिए इन तीनों को धिक्कार है मुझे भी धिक्कार है और कामदेव को भी धिक्कार है । मनुष्य को अपने पर संयम रखना चाहिए और अपनी स्त्री के अतिरिक्त दूसरी स्त्रियों पर आसक्त नहीं होना चाहिये ।

तीसरा खण्ड

वैराग्यशतक

चूडोत्तंसितचारुचन्द्रकलिकाचञ्चच्छिखा भास्वरो ।
लोलादग्धविलोलकामशलभः श्रेयोदशाग्रे स्फुरन् ।।
अन्तः स्फूदर्जदपारमोहातमिरप्राग्भारमुञ्चाटयन्
चेतः सद्मनि योगिनां विजयते ज्ञानप्रदीपो हरः ।।1।।

1. चन्द्रमा को सिर पर धारण करने वाले, कामदेव को भस्म करने वाले और महान्धकार का नाश कर, कल्याण करने वाले हृदय मन्दिर के दीपक रूपी ईश्वर का साक्षात् कर मोक्ष पद को पाते हैं ।

बोद्धारो मत्सरग्रस्ताः प्रभवः स्मयदूषिताः ।
अबोधोपहृताश्चास्ये जीर्णमंगे सुभाषितम् ।।2।।

2. बुद्धिमान् लोग ईर्ष्या से ग्रसित हैं, धनी लोग धन के अभिमान में रहते हैं और अल्पज्ञों से कहने की इच्छा नहीं होती । अतः उत्तम काव्य शरीर में ही जीर्ण हो जाते हैं । विरले लोग ही बच पाते हैं जिन्हें अभिमान न होता हो ।

न संसारोत्पन्नं चरितमनुपश्यामि कुशलम् ।
विपाकः पुण्यानां जनयति भयं मे विमृशतः ।।
महद्भिः पुण्यौघैश्चिरपरिगृहीताश्च विषयाः ।
महान्तो जायन्ते वयनमिव दातुं विषयिणाम् ।।3।।

3. संसार में जन्म लेने में भी कुशल नहीं है और स्वर्गादि भी भयप्रद ही है, क्योंकि स्वर्ग अवधि खत्म होने पर वहाँ से भी संसार में आना पड़ता है । अर्थात् विषयासक्त लोगों को दोनों, लोक परलोक क्लेशकारक ही हैं, क्योंकि पुण्य संचय करके जन्म लेने वाला भी तो वासनाओं में लिप्त होकर दुःख भोगता है । पुण्य कर्म से सुख और पाप कर्मों का फल दुःख सबको भोगना पड़ता है । यही विधि का विधान है ।

उत्खातं निधिशंकया क्षितितलं ध्माता गिरेर्धातवो ।
निस्तीर्णः सरितां पतिर्नृपतयो यत्नेन संतोषिताः ।।
मन्त्राराधनतत्परेण मनसा नीताः श्मशाने निशाः ।
प्राप्तः काण्वराटकोऽपि न मया तृष्णेऽधुना मुञ्च माम् ।।4।।

4. धन की आशा से मैंने पृथ्वी को खोदा, पहाड़ की अनेक धातुओं को फूँक डाला, सागर को मथा, राजाओं को प्रसन्न किया और रात्रि समय श्मशानों में मंत्र जप किया पर परिणाम कुछ न निकला, एक फूटी कौड़ी भी न मिली और अब अन्तकाल आ गया है इससे हे तृष्णे ! मेरा पिंड छोड़ दो । ये धन दौलत यहीं रह जाती है, इसलिये ऐसा कर्म करना चाहिये जो साथ जा सके ।

भ्रान्तं देशमनेकदुर्गविषमं प्राप्तं न किञ्चितफलम् ।
त्यक्त्वा जातिकुलाभिमानमुचितं सेवा कृता निष्फला ।।
भुक्तं मानविवर्जितं परगृहे साशंकया काकवत् ।
तृष्णे दुर्मतिपापकर्मनिरते नाऽद्यापि सन्तुष्यति ।।5।।

5. अनेक दुर्गम देशों में भ्रमण किया, जाति कुल का अभिमान त्याग कर दूसरों की सेवा की, मान को छोड़कर पराये घर कौवे की भाँति भोजन भी करता रहा, इन सबसे कुछ भी लाभ न हुआ । अतः हे पापकर्म में लीन तृष्णे ! इतने पर भी सन्तोष क्यों नहीं करती ? जो पुरुषार्थ से अर्जित किया जाये, उस पर सन्तोष करना लाभदायक होता है ।

खलालापाः सोढाः कथमपि तदासधनपरैः ।
निगृह्यान्तर्वाष्पं हसितमपि शून्येन मनसा ।।
कृतश्चित्तस्तम्भः प्रहसितधियामंजलिरपि ।
त्वमाशे मोघाशे किमपरमतो नर्तयसि माम् ।।6।।

6. सेवा करते समय हम नित्य दुष्टों के कुवाक्यों को सहते रहे, उन्हें देख अपने आँसुओं को पोंछ कर भी हँसते हुए उन्हें प्रसन्न करते थे । उनके

सामने हाथ जोड़े, हे तृष्णे! भला अब तू मुझे क्यों नचाती है? आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सब कुछ करना पड़ता है ।

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितम् ।
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालो न विज्ञायते ।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते ।
पीत्वा मोहमयीप्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत् ।।3।।

7. सूर्य के उदय और अस्त के साथ-साथ आयु भी घटती जाती है, तथा व्यापारादि से चित्त नहीं भरता और जन्म, जरा तथा मृत्यु को देखकर भी मनुष्यों को चेत नहीं होता । इससे ज्ञात होता है कि संसार प्रमाद रूपी मदिरा से मत्त हो रहा है । क्योंकि मनुष्य समझता है कि मैं सदा जीवित रहूँगा, मृत्यु को देख कर थोड़ी देर में उसे भूल जाता है ।

दीना दीनमुखैः सदैवशिशुकैराकृष्ट जीर्णाम्बरा ।
क्रोशद्भिः क्षुत्रितैर्नरैन विधुरा दृश्येत् चेद्गेहिनी ।।
यांचाभंगभयेन गद्गदलसन्त्रुट्यद्विलीनाक्षरम् ।
को देहीति वदेत्स्वदग्धजठरस्यार्थे मनस्वी जनः ।।8।।

8. अपने दुःखी बच्चों को भूख से तड़पते और अधीर स्त्री को देखकर संसार में ऐसा कौन सा धीर पुरुष है जो याचना भंग होने के डर से मांगने को किसी के सामने हाथ नहीं फैलाता । स्वाभिमानी मर जाएगा पर भीख नहीं मांगेगा । भीख मांगना अपराध है ।

निवृत्ता भोगेच्छा पुरुबहुमानो बिगलितः ।
समानाः स्वर्याताः सपदि सुहृदो जीवितसमाः ।।
शनैर्यष्टयोत्थानं धनतिमिररुद्धे च नयने ।
अहो दृष्टः कायस्तदपि मरणापायचकितः ।।9।।

9. विषय वासना कम हुई, लोगों में मर्यादा भी घट गई, मित्रगण भी मर गये, आप भी लकड़ी टेक कर उठते हैं, आँख के सामने अन्धेरा रहता

है, इतना होने पर भी यह काया मृत्यु का नाम सुन कर कांप जाती है। क्योंकि वह यह नहीं जानता कि आत्मा अमर है, मृत्यु शरीर की होती है, आत्मा की नहीं, जिसे यह ज्ञान हो जाता है, उसे मृत्यु का भय नहीं होता क्योंकि आत्मा अनादि एवं अमर है।

हिंसाशून्यमयत्नलभ्यमशनं धात्रा मरुतकल्पितं।
व्यालानां पशवस्तृणांकुरभुजः सृष्टाः स्थलीशायिनः।।
संसारार्णवलंघनक्षमधियां वृत्तिः कृता सा नृणां।
यामन्वेषयतां प्रयान्ति सततं सर्वे समाप्तिं गुणाः।।10।।

10. ब्रह्मा सर्पों के खाने के लिए बिना हिंसा या उद्योग के वायु देते हैं, पशुओं को तृण बनाये हैं और जिनकी बुद्धि लांघने को भी समर्थ है उनकी वृत्ति उन्होंने ऐसी बनाई है कि सभी गुण उसमें ही समाप्त हो जायें, परन्तु सिद्ध न हों। बुद्धि से सद्गुणों में वृद्धि करनी चाहिये।

न ध्यातं पदमीश्वरस्य विधिवत् संसार विच्छित्तये।
स्वर्गद्वारकपाटपाटनपटुर्धर्मोऽपि नोपार्जितः।।
नारी पीनपयोधरोरुयुगलं स्वप्नेऽपि नालिंगितम्।
मातुः केवलमेव यौवनवनच्छेदे कुठारा वयम्।।11।।

11. जिसने संसार से पार होने के लिए प्रभु के पाद पंकजों का ध्यान नहीं किया, स्त्री के पुष्ट पयोधर स्वप्न में भी छाती से नहीं लगाये, उसने माता के यौवन-रूपी वन को काटने के लिए कुल्हाड़ी रूपी ही जन्म लिया है। अर्थात् अमूल्य जीवन को व्यर्थ के कार्यों में गंवाते हैं।

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्तास्तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव यातास्तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः।।12।।

12. हमने विषयों को भोगा नहीं उलटे विषय ही ने हमको भोग लिया, हम तप न तपे परन्तु तप ने हमें तपा दिया और समय नहीं बीता परन्तु हमारी आयु अवश्य व्यतीत हो गई। इतना होने पर भी तृष्णा कम नहीं हुई, अपितु हम ही वृद्ध हो गये। विषय भोग वृद्ध नहीं होते, मनुष्य आयु से वृद्ध हो जाता है।

क्षान्तुं न क्षमया गृहोचितसुखं त्यक्तं न सन्तोषतः ।
सोढा दुःसहशीतवाततपनक्लेशा न तप्तं तपः ।।
यातं वित्तमहर्निशं नियमितप्राणेर्न शम्भोः पदम् ।
तत्तत्कर्म कृतं यदेव मुनिभिस्तैस्तैः फलैर्वंचितम् ।। 13 ।।

13. क्षमा किया पर असक्त होकर, संसार सुख छोड़ा पर विवश होकर, सर्दी गर्मी आदि सहन की पर तप न किया, धन का ध्यान किया परन्तु कल्याण देने वाले ईश्वर का ध्यान नहीं किया। वह कर्म किया जो मुनियों द्वारा किये जाते हैं किन्तु उनके फलों से वंचित रहे। जैसा कर्म वैसा फल, जब शुभ कर्म किये ही नहीं तो उनका फल कैसे मिलता? ऐसा सम्भव ही नहीं कि कर्म किया और उसका फल न मिले, ये ईश्वर क नियम के विरुद्ध है।

बलिभिर्मुखमाक्रांतंपलितैरंकितं शिरः ।
गात्राणि शिथिलायन्ते तृष्णैका तरुणायते ।। 14 ।।

14. मुँह में झुरियां पड़ गई, सिर के बाल पक गये और अंग शिथिल हो गये परन्तु तृष्णा अब भी युवा होती आती है। तृष्णा को त्याग दो तो वह भी वृद्ध होकर मृत्यु को प्राप्त होगा। इसलिये मृत्यु से न डरें। जो जन्मा है उसकी मृत्यु अनिवार्य है।

येनैवाम्बरखण्डेन सम्वीतो निशि चन्द्रमाः ।
तेनैव च दिवा भानुरहो दौर्गत्यमेतयोः ।। 15 ।।

15. एक ही आकाश को पाने के लिए सूर्य, चन्द्रमा दोनों भ्रमण करते तथा दुर्दशा को प्राप्त होते हैं, परन्तु सफल कोई नहीं होता। यह कवि की कल्पना उचित नहीं लगती क्योंकि सूर्य और चन्द्रमा ईश्वर के नियम से निरन्तर भ्रमण करते हैं, असफलता का प्रश्न ही नहीं उठता क्योंकि ईश्वर के सभी नियम अपरिवर्तित हैं।

अवश्यं यातारश्चिरतरमुषित्वापि विषयाः ।
वियोगे को भेदस्त्यजति न मनो यत्स्वयममून् ।।
ब्रजन्तः स्वातंत्र्यादतुलपरितापाय मनसः ।
स्वयं त्यक्त्वा ह्येते शमसुखमनन्तं विदधति ।। 16 ।।

16. जब यह संचित विषय अन्त में छूट ही जायेगा, तो व्यक्ति उसे प्रथम ही क्यों नहीं त्याग देते? क्योंकि जब अपने से छूट जायेगा तो दुःख होगा और जब स्वयं ही उसे छोड़ देंगे तो महासुख की प्राप्ति होगी। अर्थात् किसी विषय में आसक्ति नहीं रखनी चाहिये। उसके छूट जाने में दुःख नहीं होता।

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम्।।17।।

17. सब रसों में सिद्ध तथा पुण्यवान् वे महाकवि लोग सबसे बढ़ कर हैं जिनके यश रूपी शरीर को बुढ़ापे और मृत्यु का भय नहीं है। जिसने आत्मा और परमात्मा के वास्तविक स्वरूप का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो उसे मृत्यु का भय नहीं होता।

भिक्षाशनं तदपि नीरसमेकवारं,
शय्या च भूः परिजनो निजदेहमात्रम्।
वस्त्रं च जीर्णं शतखंडमयी च कन्था।
हा हा तथापि विषयान्न परित्यजन्ति।।18।।

18. मांगने पर भी एक ही समय नीरस अन्न खाने को मिलता है, भूमि पर सोते हैं, कुटुम्ब में भी कोई नहीं है, पुराने वस्त्र की सौ टुकड़े वाली गुदड़ी पहिने हैं परन्तु तब भी आश्चर्य की बात है कि उन्हें वासनायें नहीं छोड़ती। वासनायें स्वयं नहीं छूटती, उन्हें दृढ़ निश्चय से छोड़ना पड़ता है एवं दृढ़ प्रतिज्ञा करनी पड़ती है।

स्तनौ मांसग्रन्थी कनककलशावित्युपमितौ।
मुखं श्लेल्मागारं तदपि च शशांकेन तुलितम्।।
स्रवन्मूत्रक्लिन्नं करिवरकरस्पर्धिजघन-
महो निन्द्यं रूपं कविजनविशेषैर्गुरुकृतम्।।19।।

19. कवि लोगों ने न मालूम क्यों इन निन्दा योग्य स्त्रियों के रूप को इतना बढ़ाया है, जैसे मांस के लोंदे स्तन को स्वर्णकलश, थूक खकार के गृह

मुख को चन्द्रमा, मूत्र से भोगे जंघों को गजराज के सूंड की उपमा दी है । कवि प्रायः भावना में बहकर अतिशयोक्ति अलंकार को प्रमुखता देने लगता है ।

अजानन् माहात्म्यं पततु शलभो दीपदहने ।
स मीनोऽप्यज्ञानाद्वडिशयुतमश्नातु पिशितम् ।।
विजानन्तोऽप्येते वयमिह विपज्जालजटिलान् ।
न मुंचामः कामानहह गहनो मोहमहिमा ।। 20 ।।

20. मोह के वश पतंग दीप पर गिर कर जल जाता है, मछली कटिये का मांस खाकर अपने प्राणों को नष्ट करती है । परन्तु हम व्यक्ति जान बूझकर भी इन दुःखमयी विषयों की अभिलाषा को नहीं छोड़ते । कारण काम, क्रोध, लोभ और मोह के वशीभूत दुःखदायी विषयों को नहीं छोड़ पाते ।

फलमलमशनाय स्वादु पानाय तोयं ।
शयनमविनपृष्ठं वल्कले वाससी च ।।
नवधनमधुपानभ्रांतिसर्वेन्द्रियाणा-
मविनयमनुमन्तुं नोत्सहे दुर्जनानाम् ।। 21 ।।

21. जब खाने का फल, पीने का मीठा जल, सोने को पृथ्वी और पहनने के लिये पेड़ों की छाल मौजूद ही है तो फिर धन रूपी मदिरा को पीकर मत्त धनिकों का हम क्यों निरादर सहें? सन्तोषी व्यक्ति धन रूपी मदिरा का पान नहीं करता । वह अपने पुरुषार्थ से कमाए धन से सन्तुष्ट रहता है ।

विपुलहृदयैर्धन्यैः कैश्चिज्जगज्जनितं पुरा ।
विधृतमपरैर्दत्तं चान्यैर्विजितय तृणं यथा ।।
अह हि भुवनान्यन्ये धीरश्यचतुर्दश भुञ्जते ।
कतिपयपुरस्वाम्ये पुन्सां क एष मदज्वरः ।। 22 ।।

22. प्रभु ऐसे हैं जिन्होंने संसार को पैदा कर, भरण पोषण किया और बहुतों ने इसे जीतकर और तुच्छ समझकर औरों को दान में दिया । यह सब

देखकर भी व्यक्ति दो चार ग्राम का प्रभुत्व पाकर अभिमान करने लग जाता है। जबकि ईश्वर को सारे विश्व को पैदा कर, उसका भरण पोषण व रक्षा करने पर भी अभिमान नहीं, वह तो सारे ब्रह्माण्ड का स्वामी है।

त्वं राजा वयमप्युपासितगुरुप्रज्ञाभिमानोन्नताः।
ख्यातस्त्वं विभवैर्यशांसि कवयो दिक्षु प्रतन्वन्ति नः।।
इत्थं मानद नातिदूरमुभयोरप्यावयोरन्तम्।
यद्यस्मासु पराङ्मुखोऽसि वयमप्येकांततो निस्पृहाः।।23।।

23. यदि तू राजा है तो मैंने भी गुरु-सेवा कर उच्च पद को प्राप्त किया है। यदि तू धन से प्रसिद्ध है तो कवि लोग हमारी प्रशंसा देख देशांतरों में करते फिरते हैं। इसी कारण यदि तू हम से तनिक भी मुँह फेरता है, तो मैं तुझसे अधिक निस्पृह हो जाता हूँ। अर्थात् ईश्वर को सदैव स्मरण रखें, उससे कभी मुँह न मोडें।

अभुक्तायां यस्यां क्षणमपि न यातं नृपशतै-
र्भुवस्तस्या लाभे क हव बहुमानः क्षितिभुजाम्।
तदंशस्याप्यंशे तदवयवलेशेऽपि पतयो।
विषादे कर्तव्ये विदधति जडाः प्रत्युत मुदम्।।24।।

24. जिस पृथ्वी को सैंकड़ों राजा अपनी-अपनी कह कर मर गये तो फिर उस पृथ्वी के राज्य का अभिमान ही क्या है? परन्तु यहाँ तो आजकल लोग इस समय पृथ्वी के खण्ड का खंडांश पाने पर भी अपने को भूपति मानने लग जाते हैं। संसार में यही तो आश्चर्य है कि इस भूखण्ड को पाने के लिये युद्ध लड़े जाते हैं, लाखों योद्धा युद्ध में मारे जाते हैं, यह जानते हुए भी कि यह जो आज मेरा है, वह कल किसी दूसरे का होगा।

मृत्पिण्डो जलरेखया वलयितः सर्वोऽप्ययं नन्वणुः ।
भागाकृत्य स एव संयुगशतै राज्ञां गुणैर्भुज्यते ।।
ते दद्युर्ददतोऽथवा किमपरं क्षुद्रा दरिद्रा भृशम् ।
धिक्धिक् तान्पुरुषाधमान्धनकणान्वांछन्ति तेभ्योऽपि ये ।। 25 ।।

25. अल्प भूमि मिट्टी के एक लोंदे और जल की एक रेखा से घिरी हुई है उसको भी राजा लोग युद्ध लड़-लड़ कर और अपना-अपना भाग बाँट कर किसी प्रकार भोगते हैं । ऐसे क्षुद्र और निर्धनों को दानी महादानी की उपाधि देकर जो अधम उनसे द्रव्य की इच्छा करते हैं उन्हें धिक्कार है । राजा को यदि उसके राज्य की सीमा पर कोई दूसरा कब्ज़ा करना चाहे तो बचाने के लिए युद्ध अवश्य करना चाहिये ।

न नटा न विटा न गायकाः न परद्रोहनिबद्धबुद्धयः ।
नृपसद्मनि नाम के वयं कुचभारोन्नमिता न योषितः ।। 26 ।।

26. न तो हम नट हैं न परस्त्रियों के लम्पट हैं, न गाने वाले हैं, न झूठे लबार हैं और न बड़े-बड़े स्तन के भार से झुकी हुई स्त्री हैं, फिर हमको राजा के घर पूछता ही कौन है? जिस राजा को मानव के गुणों की परख होगी, वह अवश्य पूछेगा ।

पुरा विद्वत्तासीदुपशमवतां क्लेशहतये ।
गता कालेनासो विषयसुखसिद्ध्यै विषयिणाम् ।।
इदानीं संप्रेक्ष्य क्षितितलभुजः शास्त्रविमुखा-
नहो कष्टं साऽपि प्रतिदिनमधोऽयं प्रविशति ।। 27 ।।

27. पहिले तो पंडित लोग चित्त के दुःखों को दूर करने के लिए विद्या पढ़ते रहे, फिर राजाओं को प्रसन्न कर तथा उनसे द्रव्यादि लेकर विषय भोग करने के लिये पढ़ने लगे । किन्तु आजकल राजा लोग भी शास्त्र सुनने से विमुख होते जाते हैं जिससे वह विद्या अधोगति को प्राप्त होती जाती है । यही चित्त में बड़ा दुःख है । वेद विद्वान् न होने के कारण ही राज पुरुष जनहित के कार्य न करके स्वः हित के कार्य करने लगे हैं ।

स जातः कोऽप्यासीन्मदनरिपुणा मूर्ध्नि धवलं
कपाल यस्योच्चैर्विनिहितमलंकारविधये ।
नृभिः प्राणत्राणप्रवणमतिभिः कैश्चिदधुना
नमद्भिः कः पुंसामयमत्तुलदर्पज्वर भरः । । 28 । ।

28. पहले तो ऐसे पुरुष हुए जिनके मस्तक तेज को धारण किए हैं और अब के कुछ लोग ऐसे हैं जो कुछ लोगों से प्रतिष्ठा प्राप्त कर अभिमान रूपी ज्वर से ग्रसित हैं । प्रतिष्ठा को पाकर जिसको गर्व न हो ऐसे लोग कम ही मिलते हैं ।

अर्थानामीशिषे त्वं वयमपि च गिरामीश्महे यावदर्थं,
शूरस्त्वं वादिदर्पज्वशमनविधावक्षयं पाटवं नः ।
सेवन्ते त्वां धनाढया मतिमलहतये मामपि श्रोतुकामाः,
मय्यप्यास्था न चेतत्त्वयिमम सुतरामेष राजन्गतोऽस्मि । । 29 । ।

29. हे राजन्! यदि हमारे प्रति तुम्हें श्रद्धा नहीं है तो हमें भी तुम से कुछ काम नहीं है क्योंकि यदि तुम धन के धनी हो, तो हम भी विद्या के धनी हैं, यदि तुम शस्त्र में प्रवीण हो तो हम भी शास्त्रार्थ में प्रवीण हैं । यदि तुम्हें धन-लोलुप लोग सेवते हैं तो हमें भी अज्ञान दूर करने की इच्छा से शास्त्र सुनने वाले सेवते हैं । प्रायः गुण और दोष सभी भी पाये जाते हैं केवल एक ईश्वर ही पूर्ण है ।

माने म्लायिनि खंडिते च वसुनि व्यर्थं प्रयातेऽर्थिनि ।
क्षीणे बन्धुजने गते परिजने नष्टे शनैर्यौवने । ।
युक्तं केवलमेतदेव सुधियां यज्जह्ण कन्यापयः ।
पूतग्रावगिरीन्द्रकन्दनदरीकुंजे निवासः क्वचित् । । 30 । ।

30. प्रतिष्ठा नष्ट हो गई, द्रव्य नाश हो गया, याचक लोग आये परन्तु विमुख होकर लौट गये, माता, स्त्री, पुत्र तथा और सम्बन्ध नष्ट भ्रष्ट हो गये, तो ऐसे समय में बुद्धिमान् लोग जिस पहाड़ को गंगाजी पवित्र

करती है उसकी कन्दरा में निवास करें। अर्थात् पवित्रता को कभी नष्ट भ्रष्ट न होने दें। पवित्र आत्मा का ही पवित्र ईश्वर से मिलन हो सकता है।

परेषां चेतांसि प्रतिदिवसमाराध्य बहुधा।
प्रसादं किं नेतुं विशासि हृदयं क्लेशकलिलम्।।
प्रसन्ने त्वय्यन्तः स्वयमुदितचिन्तामणि गुणो।
विमुक्तः संकल्पः किमभिलषितं पुष्यति न ते।।31।।

31. अरे मन! तू स्वयं प्रसन्न होने के लिए व्यर्थ दूसरों को प्रसन्न करता है? यदि तू अपनी तृष्णा छोड़ दे, तो चिन्तामणि के समान आप ही प्रसन्न हो जावेगा। मनुष्य को अपनी प्रसन्नता के लिये दूसरों के परोपकारार्थ कार्य करने चाहियें, न कि दूसरों को प्रसन्न करने के लिये।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद् भयम्।
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतांताद् भयम्।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्।।32।।

32. भोग में रोग का, सुख में दुःख का, कुल में कुजाति का, धन में राजादि का, दास होने में स्वामी का, मौन में दीनता का, बल में शत्रु का, रूप में वृद्धापन का, शास्त्र में पराजय का, गुण में दुष्टों का, शरीर को काल का भय है, अर्थात् सभी स्थान पर भय ही भय है; केवल वैराग्य ही निर्भय है। ईश्वर की उपासना से मनुष्य में वैराग्य उत्पन्न होता है, और वैराग्य उत्पन्न होने पर भय मुक्त हो जाता है।

अमीषां प्राणानां तुलितविसिनीपत्रपयसां।
कृते किन्नास्माभिर्विगलितविवेकैर्व्यवसितम्।।
यदाढ्यानामग्रे द्रविणमदनिः शंकमनसां।
कृतं बीतव्रीडैर्निजगुण्कथापातकमपि।।33।।

33. जिस प्रकार कमल के पत्र कर जल चंचल रहता है, उसी प्रकार चंचलता से हमने विवेक त्याग क्या-क्या न किया अर्थात् धन मद से मन्दान्ध होकर अपने गुण-गान का पाप हमने निर्लज्ज होकर किया जो उचित नहीं था । विवेक के अभाव में ऐसा होता है, मनुष्य को विवेकी बनना चाहिये ।

सा रम्या नगरी महान् स नृपतिः सामान्तचक्रं च तत्
पार्श्वे तस्य च सविदग्धपरिषत्ताश्चद्रबिम्बाननाः ।
उद्रिक्तः स च राजपुत्रनिवहस्ते वन्दिनस्ताः कथाः ।
सर्वं यस्य वशादगात् स्मृतिपथंकालाय तस्मै नमः ।। 34 ।।

34. पहले यहाँ कैसी सुन्दर नगरी थी, राजा कैसा श्रेष्ठ था, उनके पुत्र कैसे थे, कैसे बन्दीजन थे जो अच्छी अच्छी कथायें कहते थे, जिसकी आधीनता से ये सब वस्तुएं स्मृतिमात्र रह गई हैं सबका संहार करने वाले काल को नमस्कार है । परन्तु उनकी स्मृतियों से अब भी उनकी स्मृति ताजा हो जाती है और अपने को श्रेष्ठ बनाने की शिक्षा मिलती है । काल चक्र तो चलता रहता है, समय आने पर प्रलय भी होती है ।

वयं येभ्यो जाताश्चिरपरिगता व खलु ते ।
समं यैः सम्वृद्धा स्मृतिविषयतां तेऽपि गमिताः ।।
इदानीमेते स्मः प्रतिदिवसमासन्नपतना ।
गतास्तुल्यावस्थां सिकतिलनदीतीरतरुभिः ।। 35 ।।

35. जिससे हम जन्मे थे वे तो चल बसे, जिसके साथ रहे वे भी स्मरण पद में गये । हम भी दिन-दिन गिरते जा रहे हैं और बालू की नदी के तट के वृक्ष की भाँति झुकते जा रहे हैं । एक दिन उनकी तरह हम भी चल बसेंगे ।

यत्रानेकः क्वचिदपि गृहे तत्र तिष्ठत्यथैको ।
यत्राप्येकस्तदनु बहवस्तत्र चान्ते न चैकः ।।

अत्थं चेमौ रजनिदिवसौ दोलयन् द्वाविवाक्षौ ।
कालः काल्या सह बहुकलः क्रीडति प्राणसारैः । । 36 । ।

36. जिस घर में एक थे वहाँ अब अनेक हैं और जहाँ अनेक थे वहाँ अब एक है । मालूम होता है काल दिन रात के पासे संसार रूपी चौपड़ में खेल प्राणियों की गोट बनाकर खेल रहा है। अर्थात् संसार में आवागमन का सिलसिला निरन्तर चलता रहता है, जो आया है, उसे एक दिन अवश्य जाना पड़ेगा ।

तपस्यन्तः सन्तुःकिमधिनिवसामः सुरनदीं ।
गुणोदारान दारानुत परिचरामः सविनयम् । ।
पिबामः शास्त्रैघातुत विविधकाव्यामृतरसान् ।
न विद्मः किं कुर्मः कतिपयनिमेषायुषि जने । । 37 । ।

37. तप करते हुए गंगा तट पर निवास, गुणवती स्त्रियों का संग, वेदांत शास्त्र आदि का मनन, इस क्षणभंगुर शरीर से व्यक्ति चाहे तो क्या-क्या नहीं कर सकता । कर्म करने की इच्छा होनी चाहिये, बिना इच्छा के कोई कार्य नहीं होता ।

गंगातीरे हिमगिरिशिलाबद्धपद्मासनस्य ।
ब्रह्मध्यानाऽभ्यसनविधिना गोगनिद्रां गतस्य । ।
किं तेर्भाव्यं मम सुदिवसैर्यत्र ते निर्विशंकाः ।
सम्पाप्स्यन्ते जरटहरिणाः शृंगकण्डूविनोदम् । । 38 । ।

38. मेरे वे सुदिन कब आयेंगे जिस दिन गंगा के तट पर हिमालय की शिला पर पद्मासन से बैठूंगा, ब्रह्मज्ञान के अभ्यास में आँख मूँद योग जगाऊँगा और बूढ़े हरिण अशंक होकर हमारे शरीर को अपने सीगों से खुजावेंगे । जब योगाभ्यास करके समाधि सिद्ध कर लेगा तो ब्रह्म का साक्षात्कार हो जायेगा ।

स्फुरत्स्फारज्योत्स्नाधवलिततले क्वापि पुलिने ।
सुखासीनाः शान्तध्वनिषु रजनीषु द्युसरितः । ।

भव भोगोद्विग्नाः शिव शिव शिवेत्यादिवचसा ।
कदा स्यामानन्दोद्गतबहुलवाष्पाप्लुतदृशः ।। 39 ।।

39. किस दिन मैं चन्द्रमा की निर्मल चांदनी में पतित पावनी गंगा के तट पर बैठकर ध्यान करूँगा और सुनसान रात्रि में ओ३म् कहते हुए संसार के दुःख भूल आनन्द के आँसू बहाऊँगा । तब सब दुःखों की निवृत्ति हो जायेगी । सब दुःखों से छूट जाना ही मोक्ष कहलाता है ।

महादेवो देवः सरिदपि च सैषा सुरसरिद् ।
गुहा एवागारं वसनमपि ता एव हरितः ।।
सुहृद्वा कालोऽयं व्रतमिदमदैन्यव्रतमिदं ।
कियद्वा वक्ष्यामो वटविटप एवास्तु दयिता ।। 40 ।।

40. हमारे लिए ईश्वर ही एकमात्र पूजनीय देव, गंगा ही नदी, गुफा ही घर, काल ही मित्र, निर्भयता ही व्रत और वह वृक्ष ही हमारा प्रिय है । योगी पुरुष को सब जगह ईश्वर की अनुभूति होती है, वह भय मुक्त हो जाता है, निर्भय होकर संसार में विचरता है ।

एकाकी निस्पृहः शान्तः पाणिपात्रो दिगम्बरः ।
कदा शम्भो भविष्यामि कर्मनिर्मूलनक्षमः ।। 41 ।।

41. ऐसा कब होगा जबकि मुझको एकान्त में रहने की इच्छा होगी तथा हे ईश्वर ! ऐसा सुदिन कब आवेगा जब कि हम हाथ को ही पात्र बनाये दिगम्बर रूप में कर्मों का नाश कर सकेंगे । जब समाधि सिद्ध हो जायेगी तब सारे कर्म दग्ध हो जाएंगे ।

आशानाम नदी मनोरथजला तृष्णतरंगाकुला ।
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रमध्वंसिनी ।।
मोहावर्तसुदुस्तराऽतिगहना प्रोत्तुगंचिन्तातटी ।
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नंदन्ति योगीश्वराः ।। 42 ।।

42. आशा की नदी, मरोरथ का जल, तृष्णा ही उसकी लहर है, प्रेम के मगर, तर्करूपी पक्षी हैं, धैर्य रूपी वृक्ष को गिराने वाली मोह रूपी भँवर भी हैं ! इस भयंकर नदी में भौंरा रूपी मन पड़ा हुआ है । इसलिए बड़ी चिन्ता है, क्योंकि उस दुस्तर तट वाली नदी को कोई बिरले योगी ही पार कर सकते हैं । चित्तवृत्ति निरोध से योगी सब मोह रूपी वृत्तियों से ऊपर उठ जाता है तो वह परम पद मोक्ष को पा लेता है ।

आसंसारं त्रिभुवनमिदं चिन्वतां तात तादृङ् ।
नैवास्माकं नयनपदवीं श्रोतवर्त्मागतो वा । ।
योऽयं धत्ते विषकरिणी गाढ़मूढ़ाभिमान-
क्षीवस्यान्तः करणकरिणः संयमालानलीलाम् । । 43 । ।

43. हे मित्र ! हम इस संसार में ऐसे अभिमानी को खोजते हैं जो मन रूपी उन्मत्त हाथी और विषय रूपी हथिनियों को वश में कर सके, परन्तु मिलना तो दूर रहा सुनने में भी न आया । हृदय के अन्दर बैठे ईश्वर को जब देखने का प्रयास किया जाता है तो वह अवश्य मिल जाता है ।

ये वर्द्धन्ते धनपतिपुरः प्रार्थनादुःखभाजो ।
ये चाल्पत्वं दधति विषयाक्षेपपर्यस्त बुद्धेः । ।
तेषामन्तः स्फुरितहसितं वासराणां स्मरेयं ।
ध्यानच्छेदे शिखरि कुहरग्रावशय्यानिषण्णः । । 44 । ।

44. ऐसा कब होगा जब हम धनियों से प्रार्थना करके दुःख पाए हुए तथा विषयी लोगों से अपने को छोटा समझने वाले बुद्धिमानों की दशा पर हँसते हुए पहाड़ की गुफा में बैठ कर ईश्वर का ध्यान करेंगे । जब अज्ञानता दूर हो जाती है तो ईश्वर में ध्यान लगने लगता है ।

विद्या नाधिगता कलंकरहिता वित्तं च नोपार्जितं ।
शुश्रूषापि समाहितेन मनसा पित्रोर्न सम्पादिता । ।
आलोलायतलोचना युवतयः स्वप्नेपि नालिंगिताः ।
कालोऽयं परपिण्डलोलुपतया काकैरिव प्रेर्यते । । 45 । ।

45. मैंने विद्या नहीं पढ़ी, धन न कमाया, एकाग्रचित से माता पिता की सेवा भी नहीं की और चंचल तथा बड़े नेत्र वाली सुन्दरियों को स्वप्न में भी गले नहीं लगाया बल्कि दूसरों के पास का लोभ करते हुए कौवे की भाँति व्यर्थ ही समय बिताया। अज्ञानता के कारण जीवन बर्बाद हो जाता है और अज्ञानता का कारण अविद्या है।

विस्तीर्णे सर्वस्वे तरुणकरुणापूर्णहृदयाः
स्मरन्तः संसारे दिगुणपरिणामावधिगतीः।
वयं पुण्यारण्ये परिणतशरच्चन्द्र किरणा-
स्त्रियामां नेष्यामो हरचरणचित्तैकशरणाः।।46।।

46. लोग इस संसार में सर्वस्व नष्ट होने पर व्यर्थ रोते हैं, क्योंकि यह तो एक दिन जायेगा ही अतः हे ईश्वर! वह शुभ दिन कब होगा कि जब मैं आपको रक्षक समझ शरद ऋतु की चांदनी में बैठ कर आपके चरणों का ध्यान करूँगा। जिस दिन से प्रभु के चरणों में ध्यान लगाना आरम्भ कर दोगे, वह दिन शुभ दिन होगा और जीवन का भी शुभारम्भ हो जाएगा।

वयमिह परितुष्टा वल्कलैस्तवं च लक्षम्या।
सम इव परितोषो निर्विशेषो विशेषः।।
स तु भवति दरिद्रो यस्य तृष्णा विशाला।
मनसि च परितुष्टे कोऽर्थवान को दरिद्रः।।47।।

47. हम बल्कल पर ही सन्तोष करते हैं और तुम धन से सन्तुष्ट हो तो दोनों बराबर ठहरे। जिसकी तृष्णा अधिक है वही निर्धन है। जब दोनों सन्तुष्ट हुए तो कौन धनी कौन निर्धन? तृष्णा को छोड़ने वाला धनी और तृष्णा में लिप्त दरिद्र है।

यदेतत्स्वच्छन्दः विहरणमकार्पण्यमशनं।
सहायैः संवासः श्रुतमुपशमैकव्रतफलम्।।
मनो मन्दस्पन्द बहिरपि चिरस्यापि विमृशन्।
न जाने यस्त्वैषा परिणतिरुदारस्य तपसः।।48।।

48. स्वतंत्र रहना, बिना माँगे भोजन मिलना, सत्संग होना, शास्त्र कहना वा सुनना, मनको वश में करके विचारपूर्वक कार्य करना ये सब पूर्व जन्म की तपस्या के फल हैं । पूर्व जन्मों के कर्मों के अनुसार ही मनुष्य जन्म मिलता है, और जन्म के साथ पर्वू जन्म के संस्कार भी मिलते हैं ।

भोगा मेघवितानमध्यविलसत्सौदामिनी चंचलाः ।
आयुर्वायुविधट्टिताभ्रपटलीलीनाम्बुवद्भंगुरम् ।।
लोला यौवनलालसास्तनुभृतामित्याकलय्यद्र तं ।
योगे धैर्यसमाधिसिद्धिसुलभे बुद्धिं विधध्वं बुधाः ।।49।।

49. हे पंडितो ! मेघ मण्डल में चमकने वाली बिजली के तुल्य देहधारियों का भोग चंचल है, वायु द्वारा छिन्न-भिन्न मेघ के समान आयु भी नाशवान् है और यौवन का उमंग भी स्थिर नहीं है ऐसा विचार कर धैर्यपूर्वक समाधि लगा कर योगाभ्यास करते हुए प्रभु का ध्यान करो । मन बड़ा ही चंचल है, चित्तवृत्तियों को रोकने से ईश्वर में ध्यान स्थिर होने लगता है ।

पुण्येग्रामे वने वा महति सितपटच्छन्नपार्ली कपालि-
मादाय न्यायगर्भद्विजमुखहुतभुग्धूमधूम्रोकण्ठम् ।
द्वारं द्वारं प्रवृत्तोवरमुदररीपूरणाय क्षधार्तो,
मानी प्राणी सधन्यो न पुनरनुदिनं तुल्यकुल्येषु दीनः ।।50।।

50. जिनकी चौखट न्याय ब्राह्मणों की होमी हुई अग्नि के धूम से मलीन हो, उनके द्वार पर चाहे नगर हो या वन, उज्ज्वल वस्त्र पहन, हाथ में खप्पर लेकर क्षुधा से पीड़ित, पेट रूपी कन्दरा को भरने के लिए भीख मांगना अच्छा, परन्तु समान कुल वालों में निर्धन होना अच्छा नहीं ।

चाण्डालः किमयं द्विजातिरथवा शूद्रोऽथ किं तापसः ।
किं वा तत्त्वविवेकपेशलमतिर्योगीश्वरः कोऽपि किम् ।।
इत्युत्पन्नविकल्पजल्पमुखरैः सम्भाष्यमाणा जनै-
र्न क्रुद्धाः पथि नैव तुष्मनसो यांति स्वयं योगिनः ।।51।।

51. यह चांडाल है वा ब्राह्मण, शूद्र तपस्वी है वा तत्त्ववेत्ता पंडित, योगीश्वर है या धूर्त, इस प्रकार लोगों के कहते हुए भी योगी लोग किसी से राग द्वेष नहीं करते अपितु स्वच्छंद अपने अचल पथ पर चले जाते हैं। योगी पुरुष राग, द्वेष मान, अपमान से ऊपर उठ कर सत्य पथ पर चले जाते हैं।

एतस्माद्विरमेन्द्रियार्थगहनादायासकादाश्रय-
श्रेयोमार्गमशेषदुःखशमनव्यापारदक्षं क्षणात्।
शांतं भावमुपैहि सन्त्यज निजां कल्लोललोलां गतिं
मा भूयो भज भंगुरां भवरतिं चेतः प्रसीदाधुना।।52।।

52. हे चित्त! दुःखद इन्द्रियों के विषय रूपी वन में विश्राम ले, सभी दुःखों को विध्वंस करने वाले सुखदायी मार्ग को ग्रहणकर, शांत हो चंचलता छोड़ दे और नाशवान् संसारी इच्छाओं को त्याग कर प्रसन्न हो। अर्थात् सुख-दुःख में समान बने रहें क्योंकि ये स्थाई नहीं हैं।

मोहं मार्जय तामुपार्जय रतिं चन्द्रर्धचूड़ामणौ,
चेतः स्वर्गतरंगिणीतटभुवामासंगमंगीकुरु।
को वा वीचिषु बुद्बुदेषु च तडिल्लेखासु च स्त्रीषु च,
ज्वालाग्रेषु च पन्नगेषु च सरिद्वेगेषु च प्रत्ययः।।53।।

53. हे मन! मोह को छोड़ ईश्वर से प्रेम कर, गंगा तट के वृक्षों के नीचे विश्राम कर। क्योंकि तरंग, पानी के बुलबुल, बिजली की चमक, अग्नि ज्वाला की शिखा और नदी के प्रवाह के स्थिर रहने का क्या विश्वास है? इसी भाँति स्त्री भी चंचल है, अतः तू उसके लीला विलास में मत फँस। अर्थात् मनुष्य को विलासता त्याग देनी चाहिए।

पुण्यैर्मूलफलैः प्रियेप्रणयिनिं प्रीतिं कुरुष्वाधुना।
भूशय्यां नववल्कलैरकरणैरुत्तिष्ठ यावो वनम्।।
क्षुद्राणामविवेकमूढमनसां यत्रेश्वराणां सदा।
चित्तव्याधिविवेक विह्वलगिरां नामापि न श्रूयते।।54।।

54. हे नीतिप्रिय बुद्धि ! तू आगे चल प्रेम से कन्द मूल खा, भू-शय्या पर सो और नवीन वल्कल धारण कर, क्योंकि अब हम वहाँ जाते हैं जहाँ मूर्ख, क्षुद्र, लोलुप और व्याधिजनित अविचार से भरे हुये पुरुषों का नाम भी नहीं सुन पड़ता । अर्थात् मोक्ष मिलने पर पवित्र आत्माओं के साथ मोक्ष में निवास होता है ।

अग्रे गीतं सरसकवयः पार्श्वतो दाक्षिणत्याः ।
पृष्ठे लीलावलयरणितं चामरग्राहिणीनाम् । ।
यद्यस्त्येवं कुरु भवरसास्वादने लम्पटत्वं ।
नो चेञ्चेतः प्रविश सहसा निर्विकल्पे समाधौ । । 55 । ।

55. सामने गवैये गाते हों, दोनों तरफ कवि लोग सरस काव्य सुनाते हों और पीछे चँवर डुलाने वाली सुन्दर स्त्रियों के कंकड़ की ध्वनि होती हो, यदि ऐसा सुख मिले तो संसार में लिपटना चाहिये, नहीं तो हे मन ! चिर समाधि में प्रवेश कर अर्थात् संसार के सुखों में लिपटा व्यक्ति को समाधि लाभ हो ही नहीं सकता ।

विरमत बुधा योपित्संगात्सुखात् क्षणभंगुरात् ।
कुरुत् करुणामैत्रीप्रज्ञावधूजनसंगमम् । ।
न खलु नरके हाराक्रांतं घनस्तनमंडलम् ।
शरणमथवा श्रोणीबिम्बं रणन्मणि-मेखलम् । । 56 । ।

56. हे पण्डितो ! स्त्रियों के संग और क्षणिक सुखों को त्याग मैत्री करुणा तथा प्रज्ञा-रूपी से संगम करो, क्योंकि जिस समय नरक में ताड़ना होगी उस समय हारों से शोभित स्त्रियों के कुच मंडल और करघनी से शोभित कटि तुम्हारी रक्षा न कर सकेगी । अर्थात् मित्रता, करुणा (दया) तथा ज्ञान देने वाले का संग करो ।

मातर्लक्ष्मि भजस्व कंचिदपरं मत्कांक्षिणीमा स्म भू-
र्भोगेषु स्पृहयालवो न हि वयं का निस्पृहाणामसि ।

सद्यः स्यूतपलाश पत्र-पुटिका-पात्रे पवित्रीकृतै- ।
र्भिक्षासक्तुभिरेव सम्प्रति वयं वृत्तिं समीहामहे । । 57 । ।

57. हे लक्ष्मी माता ! अब तू किसी अन्य पुरुष का सेवन कर क्योंकि अब हम निस्पृह हो गये हैं, अतः विषय भोग की इच्छा नहीं रही । जो निस्पृह और विरक्त होते हैं उनके यहाँ तुम्हारा मान नहीं होता । अब तो हम केवल पलाश-पत्र के दोनों में भिक्षा के सत्तू से अपना पेट भरने की इच्छा करते हैं । वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर सांसारिक वस्तु की इच्छा नहीं रहती । बस प्रभु मिलन की इच्छा होती है ।

यूयं वयं वयं युयमित्यासीन्मतिरावयोः ।
किं जातमधुना मित्र येन यूयं ववं वयम् । । 58 । ।

58. हे मित्र पहले तो जो हम हैं सो तुम हो अर्थात् दोनों में कुछ अन्तर नहीं है, ऐसा मानते थे परन्तु न मालूम कौनसी नई बात हुई कि अब हम यह समझते हैं कि हम हमीं हैं और तुम तुम्हीं हो । अर्थात् मित्रता अब नहीं रही है ।

गंगातरंगकणहिमशीकरशीतलानि,
विद्याधराध्युषितचारुशिलातलानि ।
स्थानानि किं हिमवतः प्रलयं गतानि,
यत्सावमानपर-पिंडरता मनुष्याः । । 59 । ।

59. गंगा की लहरों से उठने वाले छोटे-छोटे कणों से शीतल तथा जिसके चट्टानों पर विद्याधर बैठते हैं क्या उस हिमलालय का प्रलय हो गया है जो अपमानित होने पर भी लोग अन्य के दिये ग्रास पर निर्वाह करते हैं ? अर्थात् हिमालय की शिखाओं पर ऋषि, मुनियों के विद्या घर थे, वो समाप्त हो गये हैं, विद्याविहीन दूसरों पर निर्भर रह कर अपमान सहते हैं ।

यदामेरुः श्रीमान्निपतति युगांताग्निनिहितः ।
समुद्राः शुष्यन्ति प्रचुरनिकर-ग्राह-निलयाः । ।

धारा गच्छत्यन्तं धरणिधरपादैरपि धृता ।
शरीरे का वार्ता करिकलभकर्णाग्रचपले ।।60।।

60. जब प्रलयाग्नि से सुमेरू पर्वत गिर पड़ते हैं, बड़े-बड़े मगर और ग्राहों का घर सागर भी सूख जाता है तथा पर्वतों से दबी हुई पृथ्वी का भी नाश हो जाता है तो हाथी के कान के समान चंचल व्यक्ति के शरीर की क्या गणना है? जब प्रलय का समय आता है, उस समय पर्वत, सागर, पृथ्वी सब ईश्वर के गर्भ में समा जाती है, इसलिये ईश्वर को हिरण्यगर्भ भी कहते हैं, जीवात्माएं, परमात्मा और परमाणु रूप में प्रकृति रहती है। परमात्मा, जीवात्मा और प्रकृति ये तीनों अनादि हैं।

प्राप्ताः श्रियः सकलकामदुधास्ततः किं ।
दत्तं पदं शिरसि विद्विषतां ततः किं ।
सम्मानितः प्रणयिनो विभवैस्ततः किं ।
कल्पं स्थितं तनुभृतां तनुभिस्ततः किम् ।।61।।

61. इन नश्वर शरीरधारियों ने कामधेनु सी लक्ष्मी पाई तो क्या, शत्रुओं को पराजित किया तो क्या, धन से मित्रों का सम्मान किया तो क्या और कल्प भर जीता रहा तो क्या हुआ? जो परलोक न बनाया। अर्थात् उसका सब निष्फल है। अर्थात् जिसने मोक्ष प्राप्त नहीं किया, उसने जीवन व्यर्थ गंवाया है।

जीर्णा कन्था ततः किं सितममपटलं पट्टसूत्रं ततः किं ।
एका भार्या ततः किं हयकरिसुगणैरावृतो वा ततः किं ।।
भक्तं भुक्तं ततः किं कदानमथवा वासरान्ते ततः किं ।
व्यक्तं ज्योतिर्नवान्तर्मथितभवभयं वैभवं वा ततः किम् ।।62।।

62. पुरानी गुदड़ी पहनी तो क्या, उज्ज्वल वस्त्र तथा पीताम्बर धारण किया तो क्या, एक स्त्री ही रही तो क्या, अनेक घोड़े हाथियों सहित कई स्त्रियां रही तो क्या, अच्छे-अच्छे भोजन किये तो क्या, कुत्सित अन्न खाया तो क्या हुआ। जब तक कि उस प्रभु की ज्योति से हृदय

प्रकाशित न हुआ तो सारा वैभव व्यर्थ है । सब कुछ धन दौलत, स्त्री, सन्तान मिला, यदि ईश्वर का साक्षात्कार न किया तो सारा वैभव किसी काम का नहीं ।

भक्तिर्भवे मरणजन्म-भयं हृदिस्थं,
स्नेहो न बन्धुषु न मन्मथजा विकाराः ।
संसर्गदोषरहिता विजना वनान्ता,
वैराग्यमस्ति किमतः परमार्थनीयम् । । 63 । ।

63. हे प्रभु ! मैं यही चाहता हूँ कि सदा आपकी भक्ति हो, जरा मरण का भय न हो । स्वजनों से प्रेम हो, काम के विकार मन से दूर हों, संसर्गदोषों से मुक्त हो सुनसान वन में रहूँ और सुख से वैराग्य हो । काम, क्रोध, लोभ और मोह को त्यागने पर ही वैराग्य का मार्ग प्रशस्त होता है ।

तस्मतादनन्तमजरं परमं विकासि,
तद्ब्रह्म चिन्तय किमेभिरसद्विकल्पेः ।
यस्यानुषंगिण इमे भुवनाधिपत्यं,
भोगादयः कृपणलोकमता भवन्ति । । 64 । ।

64. जिस ब्रह्मा के लेशमात्र आनन्द पाने पर त्रिभुवन का सुख मूर्खों के योग्य ठहरता है, उन्हीं सच्चिदानन्द को सारे, अभिमान को छोड़ कर क्यों नहीं भजते ? आनन्द केवल ईश्वर के पास है, उसे पाने के लिये अभिमान को छोड़ कर उसकी उपासना करने से मिलता है ।

पातालमाविशसि यासि नमो विलंघ्य,
दिङ्मण्डलं भ्रमसि मानसचापलेन ।
भ्रान्त्यापि जातु विमलं कथमात्मलीनं,
तद्ब्रह्म न स्मरसि निर्वृत्तिमेषि येन । । 65 । ।

65. हे चित्त ! तू चंचल होकर कभी पाताल में कभी आकाश में और कभी चारों दिशाओं में भ्रमण करता है परन्तु अपने हृदय में स्थित प्रभु का ध्यान क्यों नहीं करता, जिसके द्वारा तू परमानन्द को प्राप्त हो सकता है। अर्थात् मन चंचल, चलायमान है, एक सैकंड में कहीं से कहीं पहुँच जाता है, परन्तु परमानन्द को पाने के लिये चित्तवृत्ति निरोध की आवश्यकता होती है। इसके बिना परमानन्द की प्राप्ति नहीं।

रात्रिः सैव पुनः स एव दिवसो मत्वाऽबुधा जन्तवोः,
धावन्त्युद्यमिनस्तथैव निभृतप्रारब्धतत्तक्रियाः।
व्यापारैः पुनरुक्तविषयैरेवंविधेनाऽमुना,
संसारेण कदर्थिताः कथमहो मोहान्न लज्जामहे।।66।।

66. आश्चर्य है कि लोग दुःख पाने पर मोह माया नहीं छोड़ते और पंडित लोग भी भोजनादि विषय व्यापार के लिए प्रारब्ध छोड़ दिन रात चक्कर लगाते हुए नहीं शरमाते। मोह माया में लिप्त व्यक्ति उसी में सब सुखों की अनुभूति कर बैठते हैं, इसलिये उस मायाजाल के चक्कर से बाहर नहीं निकल पाते।

मही रम्या शय्या विपुलमुपधानं भुजलता,
वितानं चाकाशं व्यजनमनुकूलोऽयमनिलः।
स्फुरद्दीपश्चन्द्रो विरतिवनितासंगमुदितः,
सुखं शान्तः शेते मुनिरतनुभूतिर्नृप इव।।67।।

67. विरक्त भूमि की सुन्दर शैया पर, भुजा का सिरहाना बना, आकाश के तम्बू में वायुरूपी पंखे से वायु लेता हुआ चन्द्रमा रूपी दीपक के प्रकाश में अपनी विरक्ति-रूपी स्त्री के साथ राजाओं के समान सुख से सोते हैं। मनुष्य विषय वासनाओं में फंसा हुआ अपने को महाराजा समझता है, जबकि ये क्षणिक सुख अत्यंत दुःखदायी हैं। नरक के द्वार हैं।

त्रैलोक्याधिपतित्वमेव विरसं यस्मिन्महाशासने।
तल्लब्ध्वाशनवस्त्रमानघटने भोगे रतिंमा कृथाः।।

भोगः कोऽपि स एक एव परमो नित्योदितो जृम्भते ।
यत्स्वादाद्विरसा भवति विषयास्त्रैलोक्यराज्यादयः ।। 68 ।।

68. ब्रह्मज्ञान के आगे त्रिलोक का आनन्द फीका है, उसे पाकर भोजन, वस्त्र मानादि की चेष्टा नहीं करता । वही भोग श्रेष्ठ है जिसके आगे त्रैलोक्य का ऐश्वर्य भी नीरस है । अर्थात् मोक्ष सुख से बढ़कर कोई आनन्द नहीं हो सकता ।

किं वेदैः स्मृतिभिः पुराणपठनैः शास्त्रैर्महाविस्तरैः ।
स्वर्गग्रामकुटीनिवासफलदैः कर्मक्रियाविभ्रमैः ।।
मुक्त्वैकं भवबन्धदुःखरचनाविध्वंसकालानलं ।
स्वात्मानन्दपदप्रवेशकलन शेषा वणिग्वृत्तयः ।। 69 ।।

69. श्रुति, स्मृति, पुराण और शास्त्रादि पढ़ा तो क्या, स्वर्ग ग्राम कुटी में निवास किया तो क्या, संसार बन्धन को छुड़ाने में प्रलयागिन जो ब्रह्मानन्द पद है उसमें प्रवेश करने के उद्योग बिना और सब सांसारिक व्यापार व्यर्थ है । सांसारिक सुखों को त्याग कर जैसे प्रलय में सब पदार्थ विलीन हो जाते हैं, वैसे सांसारिक सुख भी योगसाधना में प्रवेश होने पर विलीन हो जाते हैं ।

ब्रह्मांड मण्डलीमात्रं किं लोभाय मनस्विनः ।
शफरीस्फुरितेनाब्धेः क्षुब्धताः न तु जायते ।। 70 ।।

70. जिस प्रकार मछली के उछलने से सागर नहीं उमड़ता उसी प्रकार श्रेष्ठ विचारवान् लोगों को कोई सारा ब्रह्माण्ड देकर भी नहीं लुभा सकता । अर्थात् श्रेष्ठ विचारवान् तपस्वी लोगों को कोई प्रलोभन उनके मार्ग से विचलित नहीं कर सकता ।

रम्याश्चन्द्रमरीचयस्तृणवती रम्या वनान्तस्थली ।
रम्यं साधुसमागमोद्भवसुखं काव्येषु रम्याः कथाः ।।
कोपोपाहितवाप्पविन्दुतरलं रम्यं प्रियाया मुखं ।
सर्वं रम्यमनित्यतामुपगते चित्ते न किंचित्पुनः ।। 71 ।।

71. चन्द्र की किरणें, हरी घास वाली वनभूमि,मित्रों का साथ, शृंगाररसमयी कविता, क्रोध के आँसुओं की बूंद से चंचल और मनोहर प्यारी का मुँह यह सब कितने भले लगते थे, परन्तु जब से वैराग्य हुआ तब से यह कुछ चित्त से जाते रहे । वैराग्य उत्पन्न हो जाने पर कोई वस्तु ईश्वर के सिवाय प्रिय नहीं लगती, इन्द्रिय निग्रह से वैराग्य उत्पन्न होता है ।

भिक्षाशी जनमध्यसंगरहितः स्वायत्तचेष्टः सदा ।
दानादानविरक्तमार्गनिरतः कश्चित्तपस्वी स्थितः ।।
रथ्याकीर्णविशीर्णजीर्णवसनैरास्यूत कनीधरो ।
निर्मानो निरहंकृतिः शमसुखभोगैकबद्धस्पृहः ।। 72 ।।

72. भिक्षा वृत्ति करना, अकेले रहना, स्वाधीन विचार करना, देने लेने के झगड़े में न पड़ना, फटे पुराने वस्त्रों की गुदड़ी ओढ़ना, मन अभिमान से रहित ब्रह्मानन्द की इच्छा करना, यह सब कोई तपस्वी ही कर सकता है । त्यागभाव व प्रभुप्राप्ति की भावना किसी में ही उत्पन्न होती है, यह भी सब प्रभुकृपा के बग़ैर नहीं हो पाता, प्रभुकृपा का पात्र बन कर ही यह कर पाना संभव होता है ।

मातर्मेदिनि ताता मारुत सखे तेजः सुबन्धो जलम् ।
भ्रातर्व्योम निबद्ध एव भवतामेष प्रणामांजलिः ।।
युष्मत्संगवशोपजातसुकृतोद्रेकस्फुरन्निर्मल-
ज्ञानापास्तसमस्तमोहमहिमालीयेऽपरेब्रह्मणि ।। 73 ।।

73. हे माता पृथ्वी, पिता वायु, सखा तेज, बन्धु जल और भाई आकाश तुम्हें हाथ जोड़कर अन्तःकरण से प्रमाण करता हूँ क्योंकि तुम्हारे संग से पुण्य हुआ, पुण्य के उदय होने से ज्ञान निर्मल हुआ और निर्मल ज्ञान से मोह माया दूर हुई जिससे अब ब्रह्म को प्राप्त होते हैं । ईश्वर का धन्यवादी पुरुष सबके उपकारों के लिये कार्य करते हैं, और मोह माया से दूर होकर ब्रह्म की गोद में बैठने के पात्र होते हैं ।

यावत्स्वस्थमिदं कलेवरगृहं यावच्च दूरे जरा,
यावच्चेन्द्रियशक्तिप्रतिवृता यावत्क्षयो नायुषः ।
आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्यः प्रयत्नो महान्,
प्रोद्दीप्ते भवने च कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ।। 74 ।।

74. जब तक शरीर पुष्ट है, नीरोग है, वृद्धपन दूर है, इन्द्रियों की शक्ति कम नहीं हुई है, आयुष्य भी क्षीण नहीं हुई है तब तक बुद्धिमानों को चाहिये कि कल्याण का उपाय कर लें, नहीं तो घर जलने पर कुआँ खोदने से क्या होगा । आयु के बीत जाने पर कल्याण कार्यों के विषय में उपाय करना, व्यर्थ है । समय के मूल्य को समझना चाहिये, क्योंकि बीता समय कभी वापिस नहीं आता ।

नाभ्यस्तां भुवि वादिवृन्ददमनी विद्या विनीतोचिता ।
खड्गाग्रैः करिकुम्भपीठदलनैर्नार्कं न नीतं यशः ।
कान्ताकोमलवल्लपाधररसः पीतो न चन्द्रोदये ।
तारुण्यं गतमेवनिष्फलमहो शून्यालये दीपवत् ।। 75 ।।

75. यदि नम्र जनों को खुश करने वाली वादियों के गर्व को चूर करने वाली विद्या नहीं पढ़ी, तलवार के अग्रभाग से हाथी का मस्तक काट स्वर्ग में यश न फैलाया और चांदनी रात में सुन्दर स्त्री के अधर पल्लव के रसका पान नहीं किया तो हमारी जवानी उसी प्रकार व्यर्थ है जिस प्रकार सुनसान में दीपक । सबसे महत्त्वपूर्ण विद्या है, वह सांसारिक सुख सुविधा के विषय में अनभिज्ञ है, जो कार्य युवावस्था में पुरुषार्थ से करने थे उनसे वह वंचित रह जाता है ।

ज्ञानं सतां मानमदादिनाशनं,
केषांचिदेतन्मदमानकारणम् ।
स्थानं विविक्तं यमिनां विमुक्तये,
कामातुराणामपि कामकारणम् ।। 76 ।।

76. सत्पुरुषों का ज्ञान मदादि को नष्ट करता है और वही ज्ञान मूर्खों को मद से मत्त कर देता है । जैसे एकान्तवास योगियों के योग साधन का कारण और वही कामियों के काम का साधन बन जाता है । अर्थात् योगी को अपनी साधना के लिये एकान्तवास चाहिये और कुकर्मी को भी कुकर्म करने के लिए एकान्त वास चाहिये । अन्तर पाप-पुण्य कर्म का है ।

जीर्णा एवं मनोरथाः स्वहृदये यातं जरा यौवनं ।
हन्तांगेषु गुणाश्चवन्ध्यफलतां याता गुणज्ञैर्विना ।।
किं युक्तं सहसाभ्युपैति बलवान् कालः कृतान्तोऽक्षमी ।
हा ज्ञातं मदनान्तक्रांघ्रियुगलं मुक्त्वास्ति नान्या गतिः ।।77।।

77. इच्छायें हृदय में ही जीर्ण हो गईं, कुछ सिद्ध न हुआ और युवावस्था बीत गई मेरे सारे गुण बिना गुणग्राहक के व्यर्थ हुये और सर्वनाशी भयंकर काल समीप आ रहा है, ऐसे समय में बिना ईश्वर के चरण के कोई दूसरी गति रक्षक नहीं है । अर्थात् सब तरफ से मित्र, रिश्तेदारों का सहारा छूट जाता है, तब अन्त में मनुष्य ईश्वर के सहाय की प्रार्थना करता है ।

तृषा शुष्यत्यास्ये पिबति सलिलं स्वादु सुरभिः ।
क्षुधार्तः सन्शालीन् कवलयति शाकादिवलितान् ।।
प्रदीप्ते कामाग्नौ सुदृढतरमाश्लिष्यति वधू ।
प्रतीकारं व्याधेः सुखमिति विपर्यस्यति जनः ।।78।।

78. जब व्यक्ति प्यासा होता है, तो शीतल जल पीता है, भूखा होने पर भोजन करता है, जब कामवासना होती है तो सुन्दर स्त्री को गले लगाता है वस्तुतः यह एक-एक रोग की एक-एक दवा है । परन्तु मूर्ख लोग इसे उल्टा ही सुख समझते हैं । इन सब रोगों से छुटकारा पाने की एक ही औषधि है—ईश्वर की उपासना और त्याग भावना ।

शैया शैलशिला गृहं गिरिगुहा वस्त्रं तरूणां त्वचः ।
सारङ्ग सुहृदा ननु क्षितिरुहां वृत्तिः फलैः कोमलैः ।।

येषां नैर्झरणाम्बुपानमुचितं रत्यै च विद्याङ्गनाः ।
मन्यन्ते परमेश्वराः शिरसि यैर्बद्धो न सेवांजलिः ।। 79 ।।

79. पहाड़ की शिला जिनकी शैया, कन्दरा घर, वृक्षों की छाल कपड़ा, मृग मित्र, फलादि भोजन, झरने का जल पीने को और विद्या ही जिनकी स्त्री है। ऐसे ही महापुरुषों को जो दूसरों को अपने सुख के लिए प्रणाम नहीं करते, उन्हें हम ईश्वर का साक्षातकार करने वाले प्रभुभक्त मानते हैं।

उद्यानेषु विचित्रभोजनविधिस्तीव्रातितीवं तपः ।
कौपीनावरणं सुवस्त्रमभितो भिक्षाटनं मण्डनम् ।।
आसन्नं मरणं च मङ्गलसमं यस्यां समुत्पद्यते ।
तां काशीं परिहृत्य हन्त विवुधैरीन्यत्र किं स्थीयते ।। 80 ।।

80. जिस काशी के उपवनों में भोजन बनाकर खाना ही कठिन तप है और लंगोटी पहनना ही जहाँ सुन्दर वस्त्र है, भीख मांगना ही जहाँ आभूषण है और मृत्यु आना ही परम मंगल है भला उस काशी को छोड़कर लाग अन्यत्र क्यों रहते हैं। ऐसी भूमि को तपोवन कहते हैं और उस तपोवन में तपस्वी तपस्या से ईश्वर के आनन्द को प्राप्त करते अर्थात् ईश्वर को छोड़ कर अन्य जगह नहीं जाना चाहते।

नायन्ते समयो रहस्यमधुना निद्राति नाथो यदि ।
स्थित्वा द्रक्ष्यति कुप्यति प्रभुरिति द्वारेष येषां वचः ।।
चेतस्तानपहाय याहि भवनं देवस्य विश्वेशितु-
र्निर्दौवारिकनिर्दयोक्त्यपरुप निःसीमशर्मप्रदम् ।। 81 ।।

81. अभी समय नहीं है, महाराज एकान्त में कुछ विचार रहे हैं, अभी सोते हैं, डयोढी पर से उठो; तुम्हें बैठे देख हमारे महाराज हम पर क्रुद्ध होंगे। ऐसे वचन जिनके द्वार पर पहरेदार कहते हों, उन्हें त्याग, हे चित्त! उस प्रभु की शरण में जा। जहाँ कोई रोकने वाला पहरेदार ही

नहीं है। सांसारिक वातावरण को त्याग कर प्रभु शरण में जाना चाहिये, जहाँ के द्वार हमेशा सबके लिये खुले रहते हैं।

महेश्वरे वा जगतामधीश्वरे जनार्दने वा जगदन्तरात्मनि।
तयोर्नभेदप्रतिपत्तिरस्ति मे तथापि भक्तिस्तरुणेन्दुशेखरे।।82।।

82. मुझे शिव एवं विष्णु में कोई भेद नहीं दीखता, क्योंकि शिव और विष्णु दोनों ईश्वर के गुणात्मक नाम हैं। परन्तु जिनके भाल पर चन्द्र शोभित है उन्हीं में हमारी प्रीति है। अर्थात् शिव और विष्णु प्रतिमाएं हैं हम उन्हीं से ही प्रीति करने लगते हैं।

भोगा भंगुरवृत्तयो बहुविधास्तैरेव चायं भव-
स्तत्कस्येह कृतं परिभ्रमत रे लोकाः कृतं चेष्टितैः।
आशापाशशतोपशांतिविशदं चेतः समाधीयतां,
कामोच्छेत्तृहरे स्वधामनि यदि श्रद्धेयमस्मद्वचः।।83।।

83. संसार के सभी भोग नाशवान् हैं, तथा आवागमन लगा रहता है, यह जानते हुए भी न मालूम लोगों को भोग रूपी चक्र में घूमते हुये क्या फल मिलता है? अतः मित्रो कामनाशक ज्योति रूप परमपिता परमेश्वर का ध्यान करो। यह सुख भोगने वाला शरीर तो नाशवान् है, परन्तु परमानन्द का आनन्द तो आत्मा भोगती है जो अमर है।

धन्यानां गिरिकन्दरे निवसतां ज्योतिः परं ध्यायता-
मानन्दाश्रुजलं पिबन्ति शकुना निःशंकमंकेशयाः,
अस्माकं तू मनोरथोपरचितप्रासादवापीतटे,
क्रीडाकाननकेलिकौतुकजुषामायुः परं क्षीयते।।84।।

84. जो पुरुष पर्वत की कन्दरा में बैठकर ज्योति का ध्यान करते हैं, उनके आनन्दाश्रुओं की पक्षीगण गोद में बैठकर निर्भयता के साथ पीते हैं। और हम लोग केवल मनोरथ के महल में तथा क्रीडा कानन में खेलते हुए अपना जीवन समाप्त कर देते हैं। जो हिंसा छोड़ अहिंसा को

अपना लेते हैं, सब पक्षी पशु आदि निर्भय होकर उनके पास बैठते हैं। अर्थात् वे भी हिंसक भाव छोड़ देते हैं।

आक्रांतं मरणेन जन्म जरसा विद्युच्चलं यौवनं।
संतोषो धनलिप्सया शमसुखं प्रौढांगनाविभ्रमैः।।
लोकैर्मत्सरिभिर्गुणा वन भुवो व्यालैर्नृपा दुर्जनै-
रस्थैर्येण विभूतियोऽप्युपहता ग्रस्तं न किं केन वा।।85।।

85. मृत्यु ने जन्म को, बुढ़ापे ने यौवन को, धन की इच्छा ने सन्तोष को, स्त्रियों के हाव भाव ने शान्त सुख को, ईर्ष्या ने गुणों को, सर्पों ने वन-भूमि को, दुष्टों ने राजा को और चंचलता ने धैर्य को अर्थात् इस संसार में एक ने दूसरे को ग्रस्त कर रखा है। यह सब व्यवस्था ईश्वर के नियमानुसार ही है, इसको विद्वान् लोग समझते हैं, अविद्वान नहीं।

आधिव्याधिशतैर्जनस्य विविधैरारोग्यमुनमृल्यते।
लक्ष्मीर्यत्र पतन्ति तत्र विवृतद्वारा इव व्यापदः।।
जातं जातमवश्यमाशु विवशं मृत्युः करोत्यात्मसा।
त्तत्किंनाम निरंकुशेन विधिना यन्निर्मितं सुस्थितम्।।86।।

86. रोगों ने स्वास्थ्य को बिगाड़ दिया है, धन का स्थान निर्धनता ने ले लिया और जन्म लेने वाले की मृत्यु अवश्य होती है। अर्थात् विधाता ने कोई भी वस्तु स्थिर नहीं बनाई है। यह सब विधाता के नियम के अनुसार ही है, सृष्टि की तीन अवस्था हैं, उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय। इस नियम पर सब आधारित हैं। ईश्वर के सब नियम स्थिर हैं। उनमें कभी कोई परिवर्तन नहीं होता।

कृच्छ्रेणामेध्यमध्ये नियमिततनुभिः स्थीयते गर्भवासे,
कांताविश्लेषदुःखव्यतिकरविषमे यौवने चोपभोगः।
नारीणामप्यवज्ञाविलसितनियतं वृद्धभावोप्यसाधुः,
संसारे रे मनुष्या वदत यदि सुखं सवल्पमप्यस्ति किंचित्।।87।।

87. हे मनुष्यो! संसार में तिल भर भी तो सुख नहीं है। पहले अपवित्र गर्भ में रहो, युवावस्था में स्त्रियों के विरह में दुःखी तथा बुढ़ापे में स्त्रियों के

अपमान सहने पड़ते हैं । यह सब कर्मों के अनुसार ईश्वरीय व्यवस्था के अनुसार ही है ।

आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्धंगतं ।
तस्यार्द्धस्य परस्य चार्द्धमपरं बलत्ववृद्धत्वयोः । ।
शेषं व्याधिवियोगदुःखसहितं सेवादिभिर्नीयते ।
जीवे वान्तिरंगचंचलतरे सौख्यं कुतः प्राणिनाम् । । 88 । ।

88. पहले तो आयु सौ वर्ष की ठहरी । उसका आधा भाग 50 वर्ष रात्रि में गये शेष का आधा 25 वर्ष बाल्यावस्था में बीता, शेष यह 25 वर्ष दुःख, रोग, वियोग में कट जाते हैं । अर्थात् सुख भी नहीं मिलता और मिले भी कैसे जीवन तो चंचल जल तरंग की भाँति है । जीवन को व्यर्थ न गंवा कर सुखमय बनाने के लिए पुरुषार्थ करना आवश्यक है अन्यथा जीवन में दुःख भोगने पड़ते हैं ।

ब्रह्मज्ञानविवेकनिर्मलधियः कुर्वन्त्यहो दुष्करं ।
यन्मुञ्चन्त्युपभोगकांचनधनान्येकान्ततो निःस्पृहाः । ।
न प्राप्तानि पुरा न सम्पति न च प्राप्तौ दृढ़प्रत्ययो ।
वाञ्छामात्रपरिग्रहाण्यपि परं त्यक्तुं न शक्ता वयम् । । 89 । ।

89. ब्रह्मज्ञानी लोग सभी सामग्रियों को त्याग देते हैं और एक हम लोग न मिलने वाली वस्तु की भी व्यर्थ इच्छा करते हैं । इच्छाओं की कभी पूर्ति नहीं होती । इसलिये इनका त्याग ही सुखकारक है ।

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा परितर्जयन्ती,
रोगाश्च शत्रव इव प्रहरन्ति देहम् ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो,
लोकस्तथाप्यहितमाचरतीति चित्रम् । । 90 । ।

90. बुढ़ापा बाघ सा डाट रहा है, रोग शत्रुओं के समान देह पर प्रहार कर रहे हैं, आयु फूटे घड़े से जल की भाँति क्षीण होती जाती है लोग फिर भी अहित आचरण करते हैं । ये सब अविद्या के कारण होता है । ज्ञान होने पर सुधार की भावना जाग जाती है ।

स्नात्वा गांगैः पयोभिः शुचि कुसुमफलैरर्चयित्वा विभोत्वा,
ध्येये ध्यान नियोज्य क्षितिधरकुहरग्रावपर्यंकमूले । ।
आत्मारामः फलाशी गुरुवचनरतस्त्वत्प्रसादात्स्मरारे,
दुःखान्मोक्ष्ये कदाहन्तव चरणरतो ध्यानमार्गैकनिष्ठः । । 91 । ।

91. हे कामदेव नाशक प्रभुजी ! मैं गंगा में स्नान कर सुन्दर पुष्पों से तुम्हें पूज, कन्दरा में चट्टान पर बैठ गुरु के वचनानुसार आपका ध्यान कर इन सांसारिक दुःखों से कब छूटूँगा । मेरा यही एक प्रश्न है । जब प्रभु के चरणों में बैठने के पात्र बन जाओगे, तब सब सांसारिक दुःख छूट जाएंगे ।

रे कन्दर्प करं कदर्थयसि किं कोदंडटंकारणैः ।
रे रे कोकिल कोमलैः कलरवैः किं त्वं वृथा जल्पसि ।
मुग्धे स्निग्धविदग्धक्षेपमधुरैर्लोलैः कटाक्षैरलं,
चेतश्चुम्बितचन्द्रचूडचरणध्यानामृते वर्तते । । 92 । ।

92. रे कामदेव ! तू क्यों अपने धनुष का टंकार करता है ? रे कोकिल ! तू क्यों व्यर्थ अपना मधुर शब्द सुनाती है । और हे मुग्धे ! चंचल कटाक्ष मत फेंक क्योंकि मेरा मन ईश्वर के चरणों के ध्यान में लग रहा है । अर्थात् भक्ति में मग्न योग साधक के ऊपर इन बातों का कोई प्रभाव नहीं होता ।

कौपीनं शतखण्डजर्ज्जरतरं कन्था पुनस्तादृशी ।
नश्चिन्त्यं सुखासाध्यमशनं शय्या श्मशाने वने । ।
मित्रामित्रसमानतातिविमला चिन्ताऽथशून्यालये ।
ध्वस्ताशवमदप्रमादमुदितो योगी सुखं तिष्ठति । । 93 । ।

93. सौ टुकड़े वाली गुदड़ी, बिना परिश्रम भिक्षान्न, श्मशान तथा वन का निवास, मित्र शत्रु में समभाव ऐसा पुरुष मद और प्रमाद का नाश कर एकांत स्थान में ब्रह्मज्ञान का अभ्यास करता हुआ परमानन्द को प्राप्त होता है । प्रमादरहित होकर ईश्वर का चिंतन करने वाला ही परमानन्द को प्राप्त कर सकता है ।

सृजति तावदशेषगुणाकरं पुरुषरत्नमलंकरणं भुवः ।
तदपि तत्क्षणमङ्गिकरोति चेदहहकष्टमपंडितता विधेः । । 94 । ।

94. भगवान् सर्वगुणसम्पन्न तथा पृथ्वी-भूषण व्यक्ति को बना कर फिर उसका क्षणभर में नाश कर देते हैं । अर्थात् ईश्वर नियमों में ही संसार बंधा हुआ है । उत्पत्ति स्थिति और प्रलय ये ईश्वर के नियम हैं ।

मात्रं संकुचितं गतिर्विगलिता भ्रष्टा च दन्तावलि-
र्दृष्टिर्नश्यति वर्धते बधिरता वक्त्रं च लालायते ।
वाक्यं नाद्रियते च बांधवजनो भार्या न शुश्रूयते,
हा कष्टं पुरुषस्य जीणवयसः पुत्रोऽप्यमित्रायते ।। 95 ।।

95. गात सिकुड़ गया, चाल धीमी हुई, दांत गिर गये, दृष्टि नष्ट हुई, बहिरे हो गये, मुख से लार लटक रही है, कुटुम्बी आदर नहीं करते, स्त्री सेवा नहीं करती और पुत्र भी दुःख देते हैं इन सब का मुख्य कारण वृद्धपन ही है । इसका कारण अपने को वृद्ध समझ कर कि अब मैं वृद्ध हो गया हूँ, किसी काम के लायक नहीं रहा और पुत्र पर निर्भर हो जाते हैं तो ऐसा होना सम्भव है । जबकि ईश्वर वेद में उपदेश करते हैं कि मनुष्यों को अन्तिम क्षण तक कर्म करते रहना चाहिए ।

क्षणं बालो भूत्वा क्षणमपि युवा कामरसिकः,
क्षणं वित्तैर्हीनाः क्षणमपि च सम्पूर्णविभवः ।
जराजीर्णैरङ्गैर्नट इव वलीमण्डिततनु-
र्नरः संसारान्ते विशति यमधानीजवनिकाम् ।। 96 ।।

96. यह व्यक्ति क्षणभर में बालक युवा होकर, कामी, वृद्धपन से जीर्ण हो सफेद बाल कर और चमड़ा सिकुड़ा कर यमराज नगर के ओट में छिप जाता है। ईश्वर के नियमानुसार जो जन्मा है उसकी मृत्यु अवश्यंभावी है । बुढ़ापा शीघ्र न आये इसके लिए शुद्ध आचरण, शुद्ध भोजन और शुद्ध रहन सहन परमावश्यक है ।

प्रियसखे विपद्दण्डव्रातपतापपरम्परा-
परिचयचले चिन्ताचक्रे निधाय विधिः लखः ।।
मृदमिव बलात्पिण्डीकृत्य प्रगल्भकुलोलवत् ।
भ्रमयति मनो जानीमः किमत्र विधास्यति ।। 97 ।।

97. हे सखी! चतुर कुम्हार की भाँति मेरा प्रारब्ध चिन्ता के चाक पर,

मिट्टी के लोदे के समान मनको रख कर विपत्ति रूपी डंडे से घुमा रहा है जिससे कहा नहीं जाता कि आगे क्या होगा । आगे सब कुछ कर्मों के अनुसार ही होगा ।

अहौ वा हारे वा बलवति रिपौ वा सुहृदि वा,
मणौ वा लोष्ठेदाकुसुमशयने वा दृषदि वा ।
तृणे वा स्त्रैणे वा मम समदृशो यान्ति दिवसाः,
क्वचित्पुण्येऽरण्ये शिवशिवशिवेति प्रलपतः । । 98 । ।

98. सर्प, हार, शत्रु, मित्र, चट्टान कोमल शैया, मणि व पत्थर और गुफा स्त्रियों के समूह में सम होकर हम ओ३म्-ओ३म् जपते हुए किसी वन में समय व्यतीत करें हमारी यही इच्छा है अर्थात् ईश्वर में मन को लगायें ।

वैराग्ये संचरत्येको नीतौ भ्रमति चापरः ।
शृंगारे रमते कश्चिद्भृवि भेदः परस्परम् । । 99 । ।

99. किसी का मन नीति में, किसी का शृंगार में और किसी का मन वैराग्य में रम रहा है । इसी कारण महाराज भर्तृहरि जी ने तीन शतक बनाये हैं कि जो जैसा हो अथवा जिसकी जिसमें प्रीति हो वह उसी शतक से लाभ उठावें । यह मनुष्य पर निर्भर करता है कि उसकी पसन्द एवं रुचि किस में है ।

चला लक्ष्मीश्चलाः प्राणाश्चलं जीवितयौवनम् ।
चलाचले च संसारे धर्म एको हि निश्चलः । । 100 । ।

100. इस चल संसार में लक्ष्मी, प्राण, जीवन, यौवन सभी चल हैं, अर्थात् सदा एक ही अवस्था में नहीं रहते हैं । केवल धर्म ही निश्चल है जो सदा समान रहता है और जिसका कभी नाश नहीं होता है । धर्म का नाश होने पर सर्वनाश हो जाता है । सत्य ही धर्म है, असत्य किसी का धर्म नहीं हो सकता । सत्य पर यह पृथिवी टिकी है । अतः सत्य का ही अनुसरण करें ।

लेखक द्वारा प्रकाशित एवं निःशुल्क वितरित पुस्तकों की सूची :–

1. रामचरितमानससार
2. गीतासार
3. उपनिषद्सार
4. सत्यार्थप्रकाशसार
5. भक्ति
6. सुखीजीवन
7. आत्मबोध
8. वेदवाणी
9. वैदिकसाहित्य
10. अमृतवाणी
11. महर्षि दयानंद
12. स्वामी विवेकानंद
13. शरणागति
14. वैदिक रामायण
15. क्या आप जानते हैं ?
16. शेॅर-ओ-शायरी
17. ओ३म्

लेखक द्वारा अप्रकाशित पुस्तकों की सूची :–

1. वैदिक उपनिषद्वाणी
2. वैदिक दर्शनवाणी
3. वैदिक मनुस्मृति
4. वैदिक महाभारत
5. वैदिक गीता
6. अमर धर्मग्रंथ
7. अमर नीतिग्रंथ
8. पुराणपरिचय
9. ईश्वरसिद्धि
10. राष्ट्रभाषा हिन्दी
11. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
12. महावीर हनुमान
13. योगिराज श्रीकृष्ण
14. आदिशंकराचार्य
15. आचार्य चाणक्य
16. दस गुरु
17. आर्यसमाज के महामानव
18. स्वामी रामतीर्थ
19. संस्कार
20. गीतांजलि
21. आर्यसमाज
22. गायत्रीरहस्य
23. ज्ञानामृत
24. यज्ञ
25. संत
26. संतवाणी
27. आत्मकथा
28. भतृहरि शतक
29. सामान्य हिन्दी (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
30. **Great Thoughts**
31. **General English**
    (Part I to V)
    (For All Classes)
32. ब्रह्मचर्य
33. गृहस्थ

कृपया पाठकगण इस ओर भी ध्यान दें कि इनकी निम्नलिखित पुस्तकों को इनकी वैब साईट **www.dpkapoorbooks.co.in** पर भी देखा जा सकता है।

1. अमृतवाणी
2. आर्यसमाज
3. आर्यसमाज के महामानव
4. आदिशंकराचार्य
5. आचार्य चाणक्य
6. अमर नीतिग्रंथ
7. अमर धर्मग्रंथ
8. दस गुरु
9. ईश्वरसिद्धि
10. गायत्रीरहस्य
11. ज्ञानामृत
12. गीतांजलि
13. क्या आप जानते हैं ?
14. मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम
15. महावीर हनुमान
16. महर्षि दयानंद
17. ओ३म्
18. पुराणपरिचय
19. राष्ट्रभाषा हिन्दी
20. संस्कार
21. संत
22. संतवाणी
23. स्वामी विवेकानंद
24. स्वामी रामतीर्थ
25. शरणागति
26. शेर-ओ-शायरी
27. सामान्य हिन्दी
    (भाग I-II)
    (सब कक्षाओं के लिये)
28. वैदिकसाहित्य
29. वैदिक उपनिषद्वाणी
30. वैदिक दर्शनवाणी
31. वैदिक रामायण
32. वैदिक महाभारत
33. वैदिक गीता
34. योगिराज श्रीकृष्ण
35. यज्ञ
36. आत्मकथा
37. भर्तृहरिशतक
38. ब्रह्मचर्य
39. गृहस्थ
40. वैदिक मनुस्मृति
41. **Great Thoughts**
42. **General English**
    (Part I to V)
    (For All Classes)